स्मरण-दर्पण

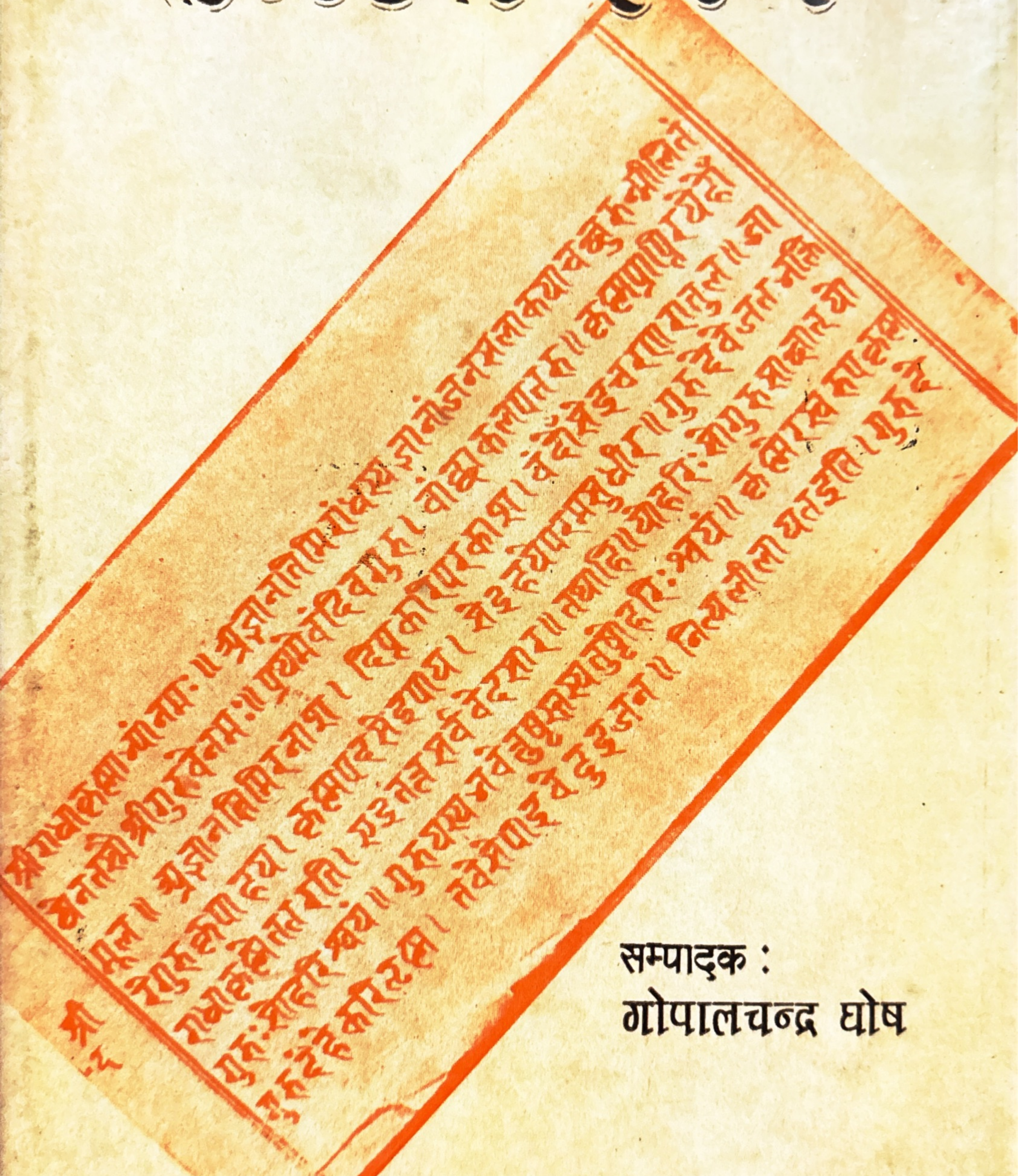

सम्पादक :
गोपालचन्द्र घोष

वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन

कविराज रामचन्द्र दास कृत

स्मरण-दर्पण

सम्पादक :
गोपालचन्द्र घोष
साहित्य-विशारद
पुस्तकालयाध्यक्ष :
वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन

वृन्दावन शोध संस्थान
रमणरेती, वृन्दावन–२८१ १२४

प्राक्कथन

वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन के विद्वान् संस्थापक अध्यक्ष डा० रामदास गुप्त का यह पावन संकल्प रहा है कि ब्रजमंडल की बहुमूल्य धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक निधि का उचित संरक्षण एवं प्रकाशन संस्थान के द्वारा निरन्तर किया जाय। बंगीय कविराज रामचन्द्र दास (१७ वीं शताब्दी) की महत्वपूर्ण कृति स्मरण-दर्पण की अनेक पांडुलिपियाँ उन्होंने स्व० गोराचाँद गोस्वामी के सौजन्य से राधा दामोदर मन्दिर के ग्रंथागार से लाकर संस्थान में सुरक्षित की थीं।

डा० रामदास गुप्त की प्रेरणा से संस्थान के पांडुलिपि पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्रीगोपालचन्द्र घोष ने सभी पांडुलिपियों के समीक्षात्मक अध्ययन के द्वारा स्मरण-दर्पण का सम्पादन किया और साथ ही इसका सरल एवं सुबोध हिन्दी भाषा में अनुवाद भी तैयार किया। स्थान-स्थान पर रामचन्द्र दास की रस-दृष्टि का मर्मोद्घाटन करने के लिये उन्होंने विशेष टिप्पणियाँ देकर बंगला एवं संस्कृत के वाक्यों का भावार्थ भी स्पष्ट किया है। इस श्रमसाध्य कार्य के लिये वे वस्तुतः बधाई के पात्र हैं।

कविराज रामचन्द्र दास महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के आवेशावतार स्वरूप श्रीनिवासाचार्य प्रभु के अन्तरंग शिष्य थे। उनके इस ग्रन्थ रत्न को संत साधकों एवं भक्त-वैष्णवों तथा व्रज साहित्य-रसिकों की सेवा में समर्पित करते हुए संस्थान स्वयं अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता है। बंगला भाषा की इन स्मरण-मंगल त्रिपदियों का रसास्वादन कर यदि सुबुद्ध रसिकजन को आनन्द लाभ हुआ तो यह प्रयास सर्वथा कृतार्थ हो जायगा।

इस ग्रंथ के मुद्रण का कार्य रतन प्रेस, वृन्दावन के अध्यक्ष श्रीप्रीतमलालजी गोस्वामी ने मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर यथा शीघ्र सम्पन्न कराया इसके लिये मैं उनका आभारी हूँ।

इस प्रकाशन के लिये संस्थान के संस्थापक अध्यक्ष डा० रामदास गुप्त के साथ ही हम मानद सचिव श्रीप्रेमशंकर एडवोकेट के भी विशेष रूप से आभारी हैं जिन्होंने इसे इतने थोड़े समय में मुद्रित कराने की व्यवस्था की।

इस ग्रंथ के प्रकाशन कार्य में इसके पारायण, प्रूफ-संशोधन एवं संस्कृत श्लोकों के पाठालोचन एवं अनुवाद आदि करने में मुझे भी "बाँटन वारे कूँ लगै ज्यों महँदी को रंग" इस न्याय के अनुसार अनन्त आनन्दानुभूति हुई है उसके लिये मैं संस्थान के प्रति अतीव कृतज्ञ हूँ।

राधाष्टमी :
संवत् १९४६ वि०

रघुवीर शास्त्री डी० लिट्
का० निदेशक :

वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन

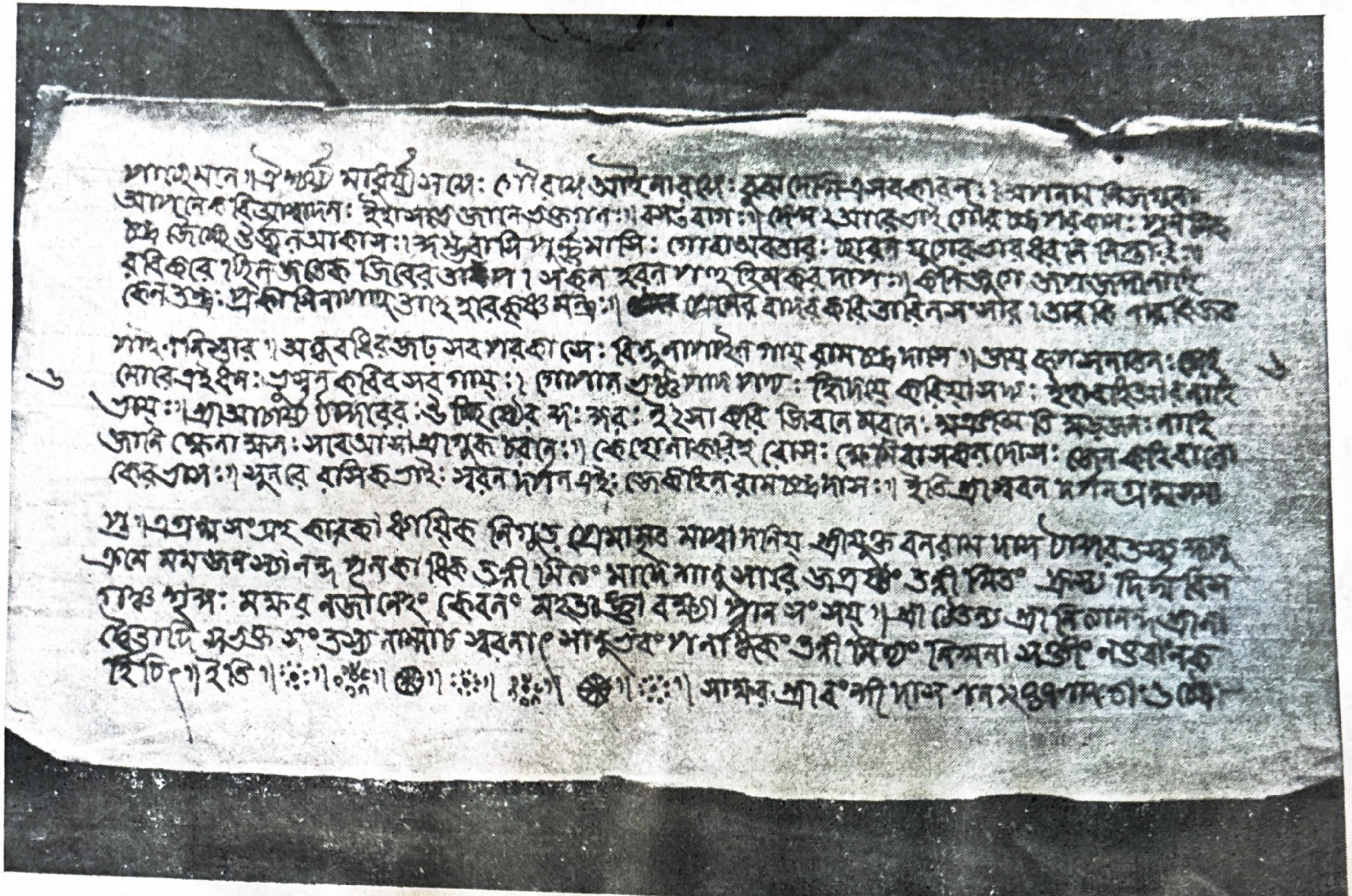

"स्मरण दर्पण" (बंगला लिपि) अन्तिम पत्रांक बंगला सन् १२४७ लिपिकार—वंशीदास

आशीर्वचन

स्मरण रागानुगा भक्ति का मुख्य अंग है। रागानुगा का साधक योगियों की तरह विष्णु या श्रीकृष्ण का ध्यान अपने हृदय-कमल में नहीं करता। वह अपने अंतश्चिन्तित सिद्ध देह से तादात्म्य स्थापित कर भावना में व्रज धाम में रहकर रात-दिन श्रीकृष्ण की सेवा करता है—

मने निज सिद्ध देह करिया भावन।
रात्रि दिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन॥

(चै० च० २. २२. ९०)

ऐसा करते-करते श्रीकृष्ण की स्वरूप शक्ति की तृप्ति स्वरूपा भक्ति के अचिंत्य प्रभाव से अंतश्चिन्तित देह पूर्ण रूप से चिन्मयत्व प्राप्त कर दिव्य लीला जगत में प्रवेश पा लेता है। उपासना की यह पद्धति बहुत सरल और सरस है। अनुभवी श्रीरामचन्द्र कविराज ने स्मरण-दर्पण में इसी के स्वरूप, महत्व और रीति आदि पर प्रकाश डाला है। इसलिए यह ग्रन्थ बहुत महत्वपूर्ण है।

वृन्दावन शोध संस्थान ने लुप्तप्राय इस बंगला ग्रन्थ का उद्धार कर प्राचीन ग्रन्थों के उद्धार के अपने शृङ्खला-बद्ध कार्य में एक महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ दी है। ग्रन्थ का अनुवाद भी एक ऐसे व्यक्ति से करवाया है, जो सर्वथा इसके योग्य है। श्रीगोपाल चन्द्र घोष सुपंडित हैं और रसोपासना के सिद्धान्त, प्रणाली और रहस्यों से सुपरिचित हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम से इसका पाठ शुद्ध कर हिन्दी भाषा में इसका अनुवाद किया है। मूल ग्रन्थ के किसी-किसी अंश का स्वरूप, संभवतः लिपिकारों के प्रमाद से, ऐसा बन गया है कि उसका अर्थ लगाना कठिन है। उन अंशों का भी अर्थ लगाने का घोषजी ने यथा शक्ति प्रयास किया है।

—**अवधबिहारीलाल कपूर**

राधारमण मार्ग, वृन्दावन
श्रीरूप गोस्वामी विरह तिथि
श्रावण पवित्रा द्वादशी, १४ अगस्त १९८९

भूमिका

रामचन्द्र कविराज

माध्वगौड़ेश्वर या गौड़ीय सम्प्रदाय के मूल प्रवर्त्तक श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु है। इस सम्प्रदाय का सिद्धान्त अचिन्त्य भेदाभेद के नाम से प्रसिद्ध है। महाप्रभु के असंख्य परिकरों में चौंसठ महन्त प्रधान हैं। उनमें भी षड् गोस्वामी तथा श्रीभूगर्भ गोस्वामी और श्रीलोकनाथ गोस्वामी प्रधान हैं। इन्हें महाप्रभु ने शक्ति संचार कर ब्रज के लुप्त तीर्थों का उद्धार, प्रमाण ग्रन्थों का सृजन एवं लुप्त देव विग्रहों का पुनः स्थापन आदि कार्य सम्पादनार्थ ब्रज में भेजा। छह गोस्वामी थे—श्रीसनातन, श्रीरूप, श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीजीव, श्रीगोपाल भट्ट तथा श्रीरघुनाथ दास। ये छः गोस्वामी गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रकाश स्तम्भ स्वरूप थे। इन्होंने अपने प्रखर पाण्डित्य, तपस्या, त्याग, वैराग्य, अनन्य निष्ठा और कठोर परिश्रम द्वारा गौड़ीय सम्प्रदाय के साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि की। इनकी सभी रचनायें प्रायः संस्कृत भाषा में हैं। इन्हें सम्प्रदाय में 'षड् गोस्वामी' के रूप में सम्मान प्राप्त है।

एक बार चैतन्य देव ने जगन्नाथपुरी में रघुनाथ दास गोस्वामी को उपदेश देते समय कहा था —"ब्रजे राधाकृष्ण सेवा मानसे करिवे।" (चै० चरि० मध्य खण्ड) अर्थात् ब्रज में रहकर राधा-कृष्ण युगल की सेवा मानसिक रूप से करना। प्रयाग में भी रूप गोस्वामी को चैतन्यदेव ने नवधा भक्ति की शिक्षा देते समय स्मरण, ध्यान एवं नाम संकीर्तन पर विशेष जोर दिया। उत्तर काल में रूप गोस्वामी ने "स्मरण-मंगल" नामक एकादश श्लोकी स्तोत्र में राधा कृष्ण की अष्टयाम लीला का वर्णन सूत्र रूप में संस्कृत भाषा में किया है। इसे आधार मानकर कृष्ण दास कविराज गोस्वामी ने द्वाविंश सर्गात्मक 'गोविन्द लीलामृत' महाकाव्य की रचना की। यह आकर ग्रंथ संस्कृत भाषा में है। इसकी टीका भी संस्कृत भाषा में है। इसे आधार मानकर नरोत्तम दास ठाकुर ने संक्षेप में "स्मरण मंगल", गोविन्द कविराज ने "एकान्त-पदावली", रायशेखर ने "पदावली" तथा रामचन्द्र कविराज ने "स्मरण-दर्पण" नामक ग्रन्थ की रचना की। मानसी सेवा का दर्पण स्वरूप यह ग्रन्थ है।

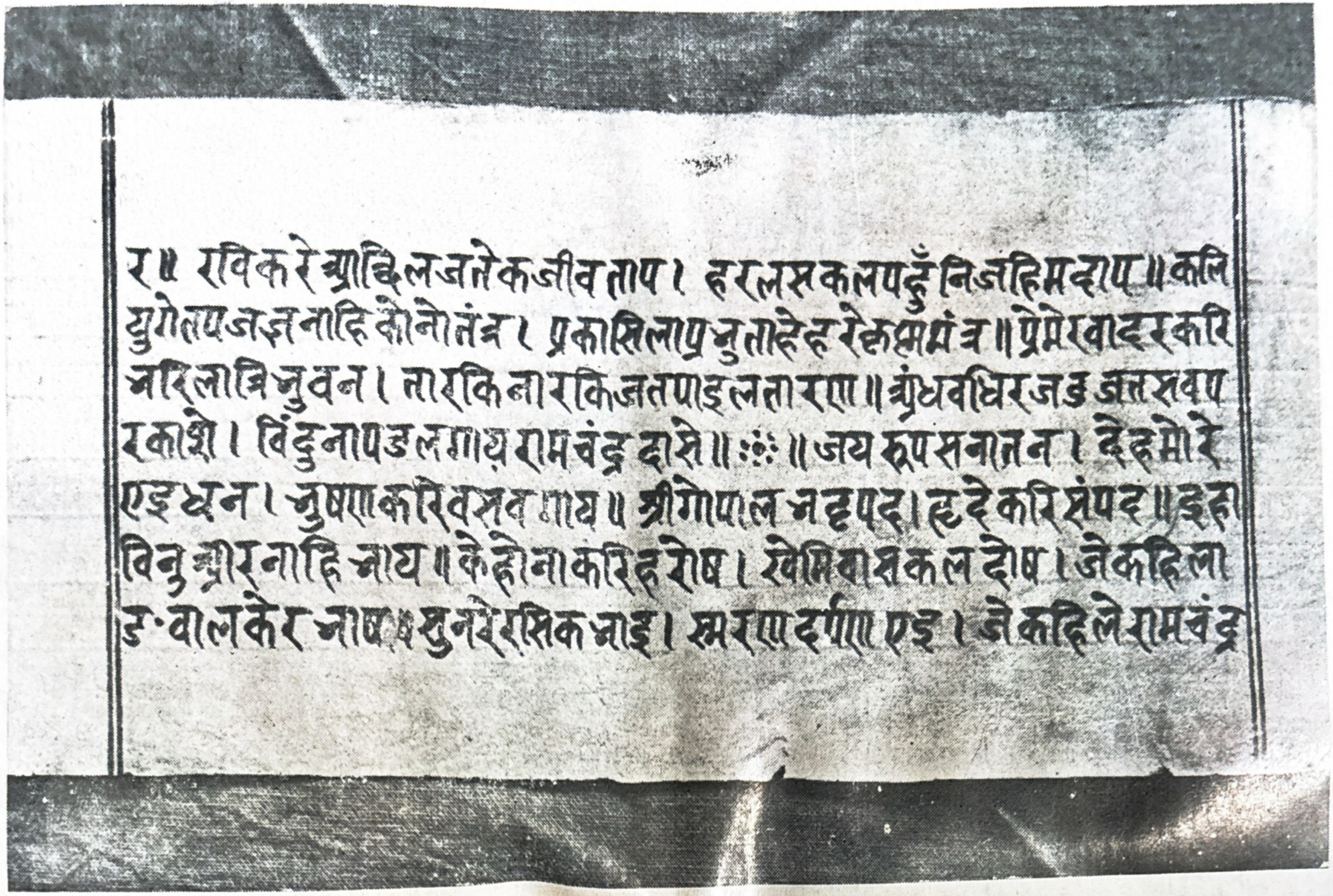

र॥ रविकरे आछिल जतेक जीव ताप। हरल सकल पढुँ निज हिम दाप॥ कलि
युगे लय जत नाहि कोनो तंत्र। प्रकासिला प्रभु ताहे हरे कृष्ण मंत्र॥ प्रेमे रवादर करि
मातिला त्रिभुवन। नारकि नारकि जत पाइल तारण॥ अंध बधिर जड जत सब प
रकाशे। विंदु नापड लगाय रामचंद्र दासे॥ ः॥ जय रूप सनातन। देह मोरे
एइ धन। गुण्ण करि वसन गाय॥ श्रीगोपाल भट्ट पद। हृदे करि संपद॥ इह
विनु आर नाहि भाय॥ केह ना करिह रोष। खेमिबा सकल दोष। जे कहिला
ड·वालकेर भाष॥ सुन रे रसिक भाइ। स्मरण दर्पण एइ। जे कहिले रामचंद्र

"स्मरण दर्पण" (नागरी लिपि) अन्तिम पत्रांक अनुमानतः १८ वीं सदी

रामचन्द्र कविराज पश्चिम बंगाल के बुधरी गाँव, जिला मुर्शिदाबाद के निवासी थे। आपके कनिष्ठ भ्राता गोविन्द कविराज गौड़ीय पदावली साहित्यकारों में उज्ज्वल नक्षत्र स्वरूप थे। श्रीजीवगोस्वामी वृन्दावन से पत्र लिखकर आपकी रचनाओं को मँगवाते थे, उनका बड़े चाव से अनुशीलन करते थे। रामचन्द्र कविराज एवं गोविन्द कविराज दोनों भ्राता पहले शाक्त धर्मावलम्बी थे। गोपाल भट्ट गोस्वामी के शिष्य श्रीनिवासाचार्य प्रभु की कृपा एवं वरद हस्त दोनों भाइयों का हुआ और दोनों उनके शिष्य बनकर परम वैष्णव एवं कृष्ण भक्त हो गये।

संस्थान में एक बंगला ग्रन्थ है 'रामचन्द्र कविराज महिमा'। पत्रांक १६ एवं अपूर्ण है। उक्त ग्रंथ में उनके आदर्श जीवन चरित्र की एक झलक है।

प्रस्तुत रचना "स्मरण-दर्पण" में ठाकुर नरोत्तम दास की रचना 'प्रेम भक्ति चन्द्रिका' की प्रतिच्छवि स्पष्ट परिलक्षित होती है। नरोत्तम दास ठाकुर रामचन्द्र जी के पारमार्थिक अभिन्न मित्र थे। यह पदों में भी व्यक्त है। प्रेम भक्ति चन्द्रिका में कहते हैं—

रामचन्द्र कविराज, सेई संगे मोर काज,
ताँर संग बिना सब शून्य।
यदि हय जन्म पुनः ताँर संग हय जेन,
तबे नरोत्तम हय धन्य॥

फिर भी यह रचना अपने में महत्वपूर्ण है। आज से ५०-६० वर्ष पूर्व स्मरण-दर्पण, प्रार्थना, प्रेम भक्ति चन्द्रिका, मनः शिक्षा आदि ग्रन्थों का नित्य पठन-पाठन होता था। आज-कल तो मात्र प्रार्थना और प्रेम भक्ति चन्द्रिका के पठन-पाठन या गायन की प्रथा प्रचलित है। संस्थान में 'स्मरण-दर्पण' की कुल १५ प्रतियाँ पूर्ण एवं अपूर्ण रूप मे प्राप्त हैं। उनमें से १२ प्रतियाँ राधादामोदर मन्दिर से उपलब्ध हुई हैं। यह सभी प्रतियाँ बंगाक्षर में हैं। अधिकांश में लिपिकार का प्रमाद स्पष्ट दीखता है, इसके अतिरिक्त एक प्रति बंगला लिपि में श्रीनिताई चरण अधिकारी, कलकत्ता, एक प्रति बंगला लिपि में, दाता श्रीअतुल कृष्ण गोस्वामी, वृन्दावन से प्राप्त हुई। मात्र एक प्रति नागरी लिपि में सुन्दर लेख में स्व० आनन्दगोपाल गोस्वामी, राधावल्लभ घेरा, वृन्दावन से प्राप्त हुई। उसने सहज ही मेरे मन को आकर्षित किया और मैंने उक्त ग्रन्थ के साथ अन्य ग्रंथों का पाठ मिलाया। उन सभी प्रतियों में यह प्रायः बहुत साफ एवं शुद्ध प्रतीत हुई। कहीं-कहीं पर बंगला प्रति से नागरी लिपि में उतारते समय लिपि प्रमाद हो गया है। मैंने मूल प्रति को यथावत् उतारा है। कहीं-कहीं 'इ' या 'ई' की मात्रा जैसी है वैसी ही रख दी है।

रचना का नमूना--

साधु मुखे कथामृत, शुनिया विमल चित, तबे गुरुदेवे हय रति ।
नित्य-नित्य बाढ़े रति, गुरु पदे हय गति, तबे हय भजन शकति ।।
कृष्णे ते अपराध हय, ताहाते निस्तार पाय, गुरु अपराधे नाहीं त्राण ।
ताहे बड़ परमाद, वैष्णवेते अपराध, गुरुदेव ना करे मार्जन ।।

अर्थ —साधु-सन्तों के मुख से हरि कथा सुनकर चित्त निर्मल हो जाता है । तभी गुरुदेव के प्रति श्रद्धा बढ़ती है । नित्य प्रति अनुराग बढ़कर गुरु चरण में स्थिर हो जाता है । फलस्वरूप, भजन शक्ति में वृद्धि होती है । कृष्ण के प्रति यदि कोई अपराध बन जाये तो उससे साधक बच सकता है, परन्तु गुरुदेव के प्रति बने अपराधों से छुटकारा पाना असम्भव है । गुरुदेव के सम्बन्ध में एक बड़ी बात यह है कि यदि उनके प्रति अपराध बन जाये तो वे भले ही क्षमा कर दें परन्तु साधु-वैष्णवों के प्रति बने अपराध को कभी क्षमा नहीं करते ।

इस प्रकार मूल एवं उसका सरल हिन्दी अनुवाद मैंने सहज रूप से किया है । कहीं-कहीं गूढ़ रहस्यों को अल्प शब्दों में वर्णन करने का प्रयास किया है । मैं इस कार्य के लिये संस्थान के संस्थापक– सभापति डा० रामदास गुप्त जी एवं माननीय निदेशक डा० कैलाशचन्द्र भाटिया का विशेष कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे उत्साहित कर इस कार्य को करने में गति प्रदान की । सम्प्रदाय के निष्किञ्चन साधु-वैष्णव वृन्दों का भी मैं आभारी हूँ । जिन्होंने कृपा-आशीर्वाद प्रदान कर मुझे उत्साहित किया । परमादरणीय डा० अवधबिहारीलाल कपूर साहब जो कि गौड़ीय वैष्णव दर्शन एवं भक्ति विज्ञान के मर्मज्ञ विद्वान हैं, उन्होंने आद्योपान्त संशोधन कर एवं सुझाव देकर इस कार्य को आगे बढ़ाया, इसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ । डा० नरेशचन्द्र बंसल जी को प्रेरणा एवं उत्साह प्रदान करने के लिये कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । अपने सहयोगी श्रीवृन्दावन बिहारी, श्रीपुनीत गोस्वामी तथा स्नेहास्पद श्रीराकेश शर्मा को विभिन्न प्रकार के सहयोग हेतु धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ ।

विनीत :

गोपालचन्द्र घोष

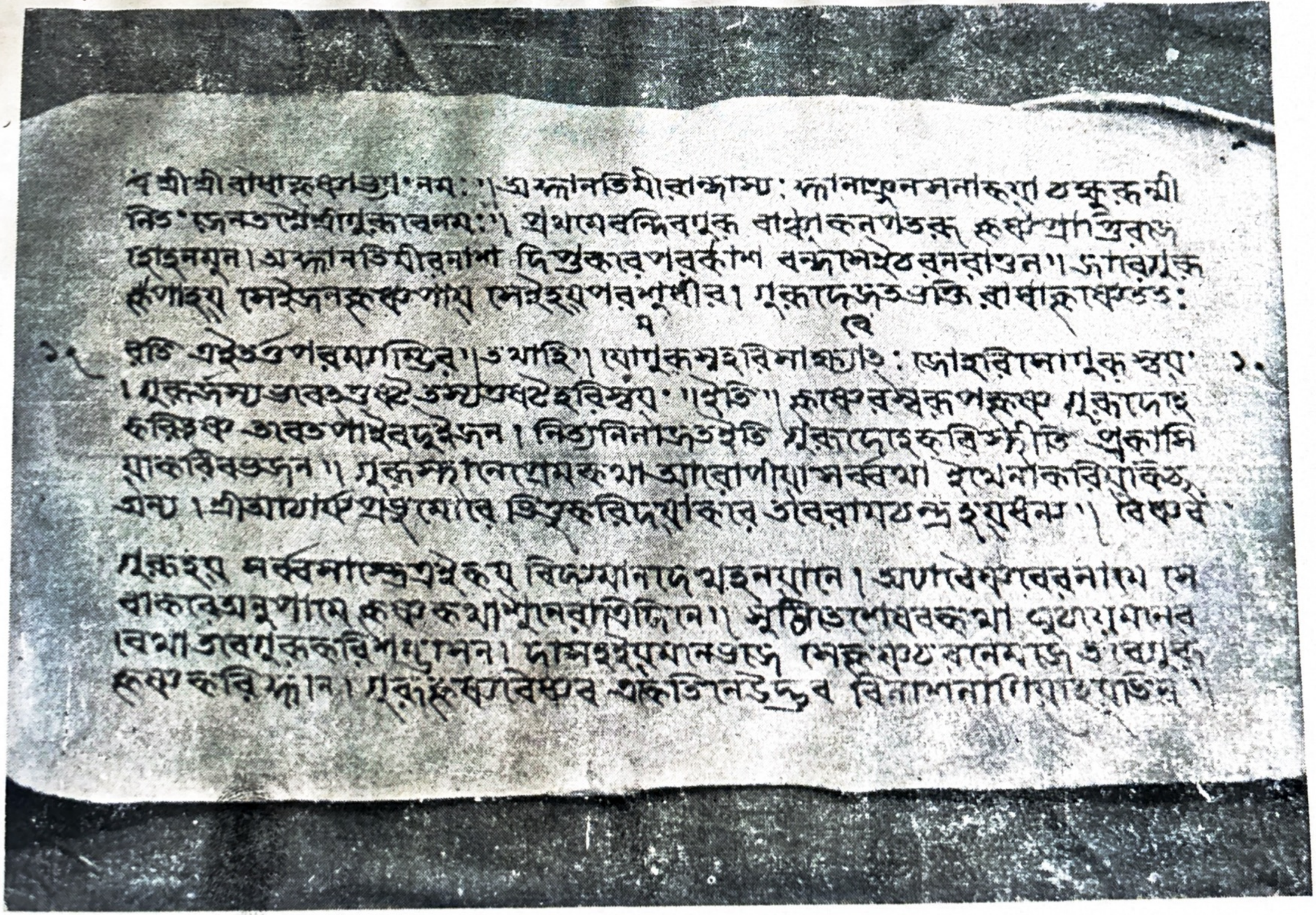

''स्मरण दर्पण'' बंगला लिपि प्रथम पत्रांक

स्मरण दर्पण

मूल पाठ

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।१।।

त्रिपदी छंद

प्रथमे बन्दिव गुरु, बाञ्छाकलपतरु,
कृष्ण प्राप्तिर जेहों मूल ।
अज्ञान तिमिरनाश, दिस करि परकाश,
बन्दौं सेइ चरणरातुल ।।१।।

जारे गुरु कृपा हय, कृष्ण पद सेइ पाय,
सेइ हय परम सुधीर ।
गुरुदेवे जत भक्ति, राधाकृष्णे ततरति,
एइ तत्त्व सर्व वेद सार ।।२।।

।। तथाहि ।।

यो हरिः सो गुरु साक्षात्,
यो गुरुः सो हरि स्वयं ।
गुरुर्यस्य भवेत्तुष्टः,
तस्य तुष्टो हरिः स्वयं ।।

त्रिपदी छद

कृष्णेर स्वरूप कृष्ण, गुरुदेहे करि तृष्ण,
तवे से पाइब दुइ जन ।
नित्यलीला जत इति, गुरुदेहे करि स्थिति,
प्रकाशिया करिब सेबन ।।३।।

गुरु स्थाने प्रेम कथा, आरोपिव सर्बथा,
इहाते ना कर किछु अन्य ।

अनुवाद

श्री श्री राधा को प्रणाम ॥ अज्ञान रूपी घोर अन्धकार से उबार कर सद्-ज्ञान विवेक-अंजन नेत्रों में लगाकर दिव्य ज्योति प्रदान करने वाले श्रीगुरुदेव को प्रणाम करता हूँ ॥ श्लोक १ ॥

पहले गुरुदेव की वन्दना करता हूँ, जो सभी मनोरथ की पूर्ति करने वाले कल्पतरु तुल्य हैं। कृष्ण प्राप्ति के मूलाधार हैं। घोर अन्धकार को नाश करके, ज्योति पुंज को प्रकाशित करने वाले, उन (गुरुदेव) के चरण कमल की वन्दना करता हूँ ॥त्रिपदी १ ॥

जिन पर गुरुदेव की कृपा होती है, उन्हें श्रीकृष्ण चरण की प्राप्ति होती है, वे परम विवेकी पुरुष बन जाते हैं। गुरुदेव के प्रति जितनी भक्ति की जाय राधा-कृष्ण के प्रति उतना ही अनुराग बढ़ेगा। यह तत्व सारे वेदों का सार है। ॥ त्रिपदी २ ॥

॥ तथाहि ॥

जो हरि हैं वही साक्षात् गुरु हैं और जो गुरुदेव हैं वे ही स्वयं श्रीहरि हैं। गुरु जिन पर प्रसन्न हों, श्रीहरि उनसे सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ श्लोक २ ॥

कृष्ण के स्वरूप अर्थात् गुरु और कृष्ण में अभेद बुद्धि से जो कहते हैं कि, गुरु देह में श्रीकृष्ण अधिष्ठान हैं, ऐसा मानने वाले को (गुरु और कृष्ण) दोनों की कृपा मिलती है। नित्य लीलाएँ जितनी हैं, सभी गुरुदेव के शरीर में स्थित हैं ऐसा मानकर, प्रकाशित (अर्थात् गुरुतत्व में ही सभी स्थित हैं ऐसा मानकर) सेवा-कार्य में रहूँगा ॥ त्रिपदी ३ ॥

राधा-कृष्ण की दिव्य प्रेम लीला गाथा का आस्वादन, गुरु रूपा सखी के आनुगत्य में करूँगा। इसमें अन्यथा नहीं करूँगा। श्रीआचार्य प्रभु (श्रीनिवासाचार्य प्रभु जो कि गोपाल भट्ट गोस्वामी के शिष्य थे और जीव गोस्वामी के पारमार्थिक छात्र थे, उन्होंने गौड़ीय आचार्यों, गोस्वामी गणों द्वारा रचित ग्रन्थों का वंगाल में

श्रीआचार्य प्रभु मोरे, भृत्य जानि दया करे,
तबे रामचन्द्र हय धन्य ।।४।।

बैष्णब गुरु हय, सर्व शास्त्रेएइ कय,
बिद्यमाने देखह नयाने ।
(करिया बैष्णब सेवा, तबे से निस्तार पावा,
अन्य भावना ना करिह मने ।।५।।)[१]

आगे बैष्णब नामे, सेवा करे अनुक्षणे ।
कृष्णकथा शुने रात्रि दिने ।
शुनिते से हरि कथा, घुचये मनेर व्यथा,
तबे गुरु करे सम्भाषणे ।।६।।

दास हैया मने भजे, सेइ श्रीचरणे मजे,
तबे गुरु कृष्ण करे ज्ञान ।
गुरु कृष्ण बैष्णब, एके तीन उद्भव,
बिलास लागिया हय भिन्न ।।७।।

(एक देह बिलासने, रस नहे आस्बादने,
तथिर कारणे हइला तीन ।)[२]
साधु जेन नौका माझे, अमूल्य रतन साजे,
दूर देशे करिते गमन ।

१. ५ नं की पंक्ति जो कि कोष्ठक बद्ध है Acc. N0. 1257 तथा Acc. No. 1293, 1955 में है।
Acc. No. 17,368 1,314, 38, 69, 331 17,368 में नहीं है।

२. No. 7 त्रिपदी के पश्चात् एक कोष्ठक बद्ध अतिरिक्त त्रिपदी अर्द्धाली Acc. No. 1293, 1257, 38, 69, 1314, 1363 में है। Aee. No. 17, 368 1507, 1955, में नहीं है।

प्रचार किया था। रामचन्द्र कविराज आप ही के अति अन्तरंग शिष्य थे।) अतः आप कह रहे हैं श्रीआचार्य प्रभु मुझे अपना सेवक जानकर यदि कृपा करें तभी रामचन्द्र कृतार्थ हो जायेगा ।। त्रिपदी ४ ।।

वैष्णव ही गुरु होते हैं, सभी शास्त्रों में ऐसा कहा गया है। इसका प्रमाण अपने नेत्रों से देख लो। (वैष्णव, साधु-सेवा से ही कल्याण है, मन में किसी प्रकार की और चिन्ता न करना) ।। त्रिपदी ५ ।।

जीव पहले वैष्णव तथा नाम में श्रद्धा रखकर सेवा अर्थात् उपासना करता है। अहर्निश वैष्णवों की संगति में कृष्ण की पावन लीला कथा का रसास्वादन करता है। हरि कथा क्रमशः सुनते-सुनते, जीव के हृदय (त्रिताप ज्वाला आध्यात्मिक, आदैविक और आधिभौतिक इन ज्वालाओं से व्यथित हृदय) में शान्ति आती है। तब उसे गुरु-कृपा की प्राप्ति होती है। गुरुदेव उसे उपदेश प्रदान करते हैं ।। ६ ।।

साधक गुरु-सेवा बहुत ही निष्ठा के साथ करता है और उनका दास होकर भजन में लग जाता है। गुरु पाद पदम में अनन्य निष्ठा के कारण, गुरुदेव शिष्य को परम-पुरुष सच्चिदानन्द, कृष्णतत्व का ज्ञान प्रदान करते हैं। गुरु, कृष्ण, वैष्णव तीनों एक ही हैं मात्र लीला विलास में उनमें भिन्नता प्रतीत होती है। ।। त्रिपदी ७ ।।

(एक देह के विलास में, रसास्वाद में पूर्णता नहीं है अतः तीनों रूपों में प्रकाशित होते हैं यह पाठ कुछ प्रतियों में है, कुछ में नहीं है।)

साधन स्मरण जत, अमूल्य रतन तत,
बाइछा करिब दुई जन ।।८।।

श्रीगुरु काण्डारि दड़, बैष्णव बाइछा बड़,
कृष्ण हयेन अनुकूल वा ।
नौकाय ये महाजन, हय से भकत जन,
अविलम्बे कुल पाय वा ।।९।।

।। तथाहि ।।

नलिनीदलगत जलवत् तरलं, तद्वत् जीवनमतिशय चपलं ।
क्षणमपि सज्जन संगतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका ।।३।।

त्रिपदी छंद

साधु मुखे कथामृत, शुनिया विमल चित
तबे गुरुदेवे हय रति ।
नित्य नित्य बाढ़े रति, गुरुपदे हय मति,
तबे हय भंजन शकति ।।१०।।

कृष्णे अपराध हय, ताहाते निस्तार पाय,
गुरु अपराधे नाहि त्राण ।
ताहाते बड़ परमाद, बैष्णवे हय अपराध,
गुरुदेव ना करे मार्जन ।।११।।

(इथे ना करिह आन, बैष्णव गुरु परमान,
अभेद दुइ एकइ पराण ।

व्यापारी जैसे नौका में अमूल्य रत्नों का खजाना लेकर, दूर देश में यात्रा करते हैं, अपना साधन भजन ध्यान आदि, यही अमूल्य रत्न भण्डार है। पार लगाने वाले दो व्यक्ति हैं ॥ त्रिपद ८ ॥

गुरुदेव को नाव खेने वाले नाविक के रूप में दृढ़ता के साथ नियुक्त करूँगा। वैष्णव पतवार स्वरूप हैं, कृष्ण मामों नौका खेने के लिये अनुकूल हवा हैं। नौका में जो महाजन अर्थात् सौदागर हैं, वे भक्तवृन्द साधक वर्ग हैं। बहुत सरल रूप से और शीघ्र ही किनारे लग जाते हैं।। त्रिपद ९ ॥

रचनाकार, शंकराचार्यपाद की एक उक्ति को प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं कमल की पंखुड़ियों में जल विन्दु जिस प्रकार चलायमान होता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी अतिशय चलायमान, अर्थात् क्षणभंगुर है। बहुत ही स्वल्पकाल में महत् जनों की संगति से, जीवन रूपी नाव पार लग जाती है ॥ श्लोक ३॥

साधु वैष्णवों के मुख से हरि कथा रूपी अमृत पान कर चित निर्मल हो जाता है। निर्मल चित्त साधक की गुरु निष्ठा में वृद्धि होती है। साधक की निष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ कर गुरु-चरण में पूर्ण रति हो जाती है, तभी भजन स्पृहा में अभि-वृद्धि होती है ॥ त्रिपदी १० ॥

कृष्ण के चरणों में यदि कोई अपराध बन जाय तो उससे मुक्ति मिल सकती है परन्तु गुरुदेव के प्रति हुए अपराध का निस्तार नहीं है। उसमें बहुत प्रमाद है, यदि वैष्णव के प्रति किसी प्रकार का अपराध बन जाता है तो गुरुदेब क्षमा नहीं करते ॥ त्रिपदी ११ ।

(वैष्णव और गुरुदेव में भेद बुद्धि नहीं रखना, दोनों अभेद और एक प्राण हैं। जो वैष्णव वही गुरु वही साक्षात् कृष्ण कल्पतरु पर साधन जगत् में गुरुदेव ही

जेहि बैष्णव सेइ गुरु,　　　　　　　　　　　सेइ कृष्ण कल्पतरु,
　　　　गुरु मुक्ष करिल विधान[१] ।।)

।। तथाहि ।।

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।
तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन, गुरुमेव प्रसादयेत् ।।४।। इति ।।

त्रिपदी छंद

जेइ गुरु सेइ कृष्ण,　　　　　　　　　　　हृदये बाढ़ये तृष्ण,
　　　　अन्य बुद्धे ना हय निस्तार ।
आपन स्वभाब जाने,　　　　　　　　　　　तीने एक वस्तु माने,
　　　　तबे तार नष्ठिक अपार ।।१२।।

एइ रूपे करि मन,　　　　　　　　　　　भज दुइ श्रीचरण,
　　　　आर ना करिह परमान ।
संसार भितरे जत,　　　　　　　　　　　देबा देबी आछे कत,
　　　　नाकरिह ताहार सन्धान ।।१३।।

राधाकृष्ण नाम मन्त्र,　　　　　　　　　　　सर्ब सार बेद मन्त्र,
　　　　गुरु मुखे शुनिया निश्चय ।
तबे गुरु [२]आज्ञा हय,　　　　　　　　　　　साधु संगे सदा रय,
　　　　दिने दिने भजन बाढ़य ।।१४।।
गुरु पंक साधु नीर,　　　　　　　　　　　ताहे पदम येन स्थिर,
　　　　एइ मत [३]साधुर प्रकाश ।

---

१. No. 11 त्रिपदी के पश्चात् एक कोष्ठक बद्ध अतिरिक्त त्रिपदी Acc. No. 38, 69, 1257, 1293, 1314, 1363, 1507,1955 में है ।
Acc. No. 17, 368 में नहीं है ।

२. इस पोथी में ज्ञान लिखा है ।

३. Acc. No. 1257 में भक्तिर पाठ है ।

मुख्य हैं ऐसा निर्णय किया गया है। (यह पाठ प्रायः ग्रन्थों में है, एक दो में नहीं है। अतः कोष्ठक में रखा गया।) प्रमाण स्वरूप एक श्लोक में कहते हैं—

हरि के रूठने पर गुरुदेव रक्षा करते हैं। परन्तु गुरुदेव के रूठने पर कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। अतः सर्वतोभावेन गुरुदेव को प्रसन्न रखना उचित है ॥ श्लोक ४ ॥

जो गुरु हैं, वे ही कृष्ण हैं, हृदय में तृष्णा जगाकर, उपासना करो पर सावधान भेद बुद्धि रखने पर गति नहीं है। (अर्थात् गुरु-कृष्ण अभेद हैं ऐसा विश्वास रखने का निर्देश है।) अपने अपने स्वभाव के अनुरूप, तीनों में समभाव रखें (अर्थात् गुरु, कृष्ण, वैष्णव तीनों ही एक हैं, ऐसा विश्वास रखें) तभी साधक की निष्ठा में दृढ़ता आती है ॥ त्रिपदी १२ ॥

इस तरह मन में श्रद्धा रखकर दोनों (गुरु-कृष्ण) के चरणों को भजो। और किसी बात को न मानो विश्व में जितने भी देवी देवता हैं उनका अनुसन्धान न करो ॥ त्रिपदी १३ ॥

राधा कृष्ण युगल के नाम एवं मन्त्र, यह सारे वेद तन्त्रों का सार तत्व है। गुरुदेव के मुख से श्रवण कर दृढ़ता से इनमें विश्वास करो। तत्पश्चात् गुरु कृपा से दिव्य ज्ञान का उदय होगा और चित्तवृत्ति को साधु संगत में सदा लगाये रखो। उत्तरोत्तर साधन से भजन में क्रमोन्नति होती है ॥ त्रिपदी १४ ॥

गुरु मानो पंक हैं, साधु वैष्णव जल स्वरूप हैं; इन्हीं के संयोग से संग करने योग्य साधु रूपी कमल की उत्पत्ति होती है। ऐसे साधु का संग करना चाहिये।

यत मत्त मधुकर मधुलोभे निरन्तर,
आसिया करेन अभिलाष ॥१५॥

गुरु कृपा जेइ देह, साधनेर मूल सेह,
अन्य मत ना करह ताय ।
आविर्भाव तिरोभाव, आविर्भावे हय लाभ,
तिरोभावे गुरु नाहि हय ॥१६॥

देहेर पतन हय, भावेर विनाश नय,
नित्य भावे पुजिब सर्वथा ।
गुरुर विनाश हय हेन यदि मने लय,
तबे तार सब हय वृथा ॥१७॥

कृष्णेर स्वरूप देह सन्देह ना कर केह,
तबे कृष्ण कृपा बुद्धि हय ।
गुरु पदे जत भक्ति, राधाकृष्णे तत आर्ति,
इहा जानि भजह निश्चय ॥१८॥

कृष्ण गुरु एक देह, हृदये चिन्तिवे सेह,
पूर्बे कहियाछि सब कथा ।
गुरु आज्ञा बलवान, अभक्त से करे आन,
भकत जनेर मने व्यथा ॥१९॥

गुरुव्रत निष्ठा करि, तबे से भजिते पारि,
आर मते नाहि परित्राण ।
श्रीआचार्य प्रभु पद, सेइ मोर सम्पद,
सेइ मोर भजन पूजन ॥२०॥

सेइ मोर प्राण धन, सेइ रत्न आभरण,
भूषण करिब सर्व गाय ।

उसमें कमल अटल रूप से खिला है। इस भाँति साधु प्रकाशित होते हैं। जितने मतवाले भौंरे हैं वे सदा मधु के लोभ में, उस कमल में रमते हैं ॥त्रिपदी १५ ॥

जिस साधक के ऊपर गुरुदेव की कृपा होती है वह साधन पथ पर आगे बढ़ता ही चला जाता है। इसमें कोई सोच-विचार मत करना। गुरुदेव नित्य विद्यमान हैं उनका केवल आविर्भाव और तिरोभाव होता है। आविर्भाव से प्राणिओं का कल्याण होता है। परन्तु गुरुदेव का अन्तर्ध्यान नहीं होता है ॥ १६ ॥

पंच भौतिक देह का विनाश होता है। परन्तु भाव राज्य में चिन्मय देह का विनाश कदापि नहीं होता है। गुरुदेव नित्य विराजमान हैं और भावना एवं श्रद्धा के साथ उन्हें सन्मान देना, उनकी पूजा करना साधक का परम कर्त्तव्य है। गुरुदेव को नश्वर मानने वाले या मन में इस बात का लेश मात्र भी विचार लाने वाले व्यक्ति का साधन भजन सब बेकार है ॥ त्रिपदी १७ ॥

गुरु विग्रह साक्षात् कृष्ण के स्वरूप हैं, इसमें सन्देह न करना, तभी कृष्ण कृपा सुलभ होगी। गुरु के प्रति जितनी भक्ति की वृद्धि होगी, राधाकृष्ण युगल में उतना ही अनुराग बढ़ेगा। इस तत्व को दृढ़ता के साथ समझकर भजन करना चाहिये ॥ त्रिपदी १८ ॥

पहले ही निवेदन कर आया हूँ कि, गुरु और कृष्ण अभेद हैं, इस तथ्य को हृदय में रखना। गुरुदेव की आज्ञा बहुत प्रभावशाली है। भक्ति से विमुख इसके विपरीत आचरण करते हैं। उनके (भक्ति विरोधी) क्रिया कलापों से भक्तों को दुःख पहुँचता है ॥ त्रिपदी १९ ॥

गुरु-सेवा ही महान व्रत है, इसका दृढ़ निष्ठा के साथ पालन करने से ही भजन में प्रवेश होता है। इसके अतिरिक्त उद्धार का दूसरा कोई उपाय नहीं है। रचनाकार रामचन्द्र कविराज अपने गुरुदेव श्रीनिवासाचार्य प्रभु के चरण कमलों की वन्दना करते हुये कहते हैं—श्रीचरण ही मेरी सम्पत्ति है। वही मेरा भजन पूजा पाठ है ॥ त्रिपदी २० ॥

वे मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं, वे ही मेरे लिये रत्न आभूषण हैं। वह आभूषण सर्वांग में धारण करूँगा। स्त्री, पुत्र परिजन सभी कुछ गुरुदेव के

[1]सुत दारा परिजन, गुरु पदे समर्पण,
तवे रामचन्द्र कृष्ण पाय ॥२१॥

गुरु कृपा महाबल, देवादि लोक परात्पर,
शरण लइया सेव 'ताय ।
गुरु कृपा जारे हय, से जीव कृष्ण पाय,
ना करिह इहाते बिस्मय ॥२२॥

नबधा प्रकारे भक्ति, साधिह जतने अति,
साधु मुखे शुनिया निश्चय ।
(केवा कोन भक्ति करि, किमते पाइल हरिः,
पुनः कहि करिया निर्णय ।।२३।।)[2]

॥ तथाहि ॥

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेबनम् ।
अर्चनं बन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥५॥ इति भा० ७।५।२३

१. No. 21. त्रिपदी में "सुतदारा परिजन" का मात्र Acc. No. 1257 में "देह गेह परिजन" पाठ है ।

२, No. 23 कोष्ठक बद्ध त्रिपदी Acc. No. 38, 69, 1257, 1314 में है । Acc. No. 17, 368 में नहीं है ।

चरणों में अर्पण कर देने से (अर्थात् अपना अस्तित्व कुछ भी नहीं है जो भी है सब गुरुदेव का है ऐसा मानकर चलने से ही) कृष्ण कृपा प्राप्ति सम्भव है। ॥ त्रिपदी २१ ॥

गुरु-कृपा में महा शक्ति निहित है। गुरु देवादिलोकों से भी परे हैं। शरणागत होकर सेवा करो। गुरुदेव की पूर्ण कृपा जिस पर होती है, उस पर कृष्ण कृपा करते हैं। इसमें सन्देह न करना ॥ त्रिपदी २२ ॥

भक्ति नौ प्रकार की है। बहुत ही सावधानी से इसका आचरण करना चाहिये। साधु सन्तों के मुख से सुनकर और इसकी विधि जानकर मन में दृढ़ता के साथ अनुसरण करना चाहिये।

(किन किन महानुभावों ने भक्ति का आचरण करके हरि से सम्बन्ध स्थापित किया है, यह मैं निर्णय कर आप लोगों को सुना रहा हूँ। उपरोक्त कोष्ठक बद्ध पंक्ति अधिकांश प्रतियों में है। दो, तीन प्रतिओं में नहीं।) ॥ त्रिपदी २३ ॥

॥ तथाहि ॥

ग्रन्थकार प्रमाण स्वरूप, श्रीमद्‌भागवत के सप्तम स्कन्ध के पंचम अध्याय के तेईसवें श्लोक में प्रहलाद और हिरण्यकशिपु संवाद में से कहते हैं—भगवान की पावन लीला गुण कथा का दत्तचित्त होकर श्रवण करना, मंगलमय उनके नामों का प्रेमपूर्वक कीर्त्तन करना और हृदय में उनके पावन रूप का ध्यान करना, चरण सेवा करना, भक्ति पूर्वक भगवान का पूजन करना, वन्दना करना, दास भाव से सेवा करना, सखा भाव से अर्थात् वे परम मित्र हैं, ऐसा मानकर सेवा करना तथा अन्त में चरमोत्कर्ष साधन के रूप में अपने आपको श्रीचरणों में समर्पणकरना, यही नवधा भक्ति है ॥ श्लोक ५ ॥

त्रिपदी छंद

हरिगुण श्रवणे, परीक्षित राजने,
शुकदेव कथन कीर्तने ।
प्रहलाद महाशय, स्मरण करिल ताय,
विद्यमाने देखिल नयने ।।२४।।

पृथु राज महामति अर्च्चने करिल स्तुति,
पद सेविल लक्ष्मी ठाकुरानी ।
अक्रूर स्तवने, पृथु देव पुजने,
दास्ये ते कपीश्रेष्ठ जानि ।।२५।।

अर्जुन सखा भावे, निरन्तर कृष्ण सेवे,
बलि आत्म कैल निवेदन ।
शुन रे रसिक भाइ, निवेदिल तोर ठाँञि,
सदा करो एइ तो भजन ।।२६।।

(भजिले आनन्द ह्वे, दुःख ताप दूरे जावे,
सारभूत गोविन्द चरण ।)[१]
गुरु कृपा मुख्य करि, भक्ति अर्थ विचारि,
साधु संग करिव सर्वथा ।
भक्ति कथा साधु संगे, आस्वादिव नाना रंगे,
तबे घुचे हृदयेर व्यथा ।।२७।।

दिने दिने बाढ़े प्रेम, जेन निरमल हेम,
राधाकृष्ण चरण सेवाय ।
लीला रसकर गान, दुँह पद कर ध्यान,
इहा विनु आर नाहि भाय ।।२८।।

---

१. No. 26 के पश्चात कोष्ठक बद्ध त्रिपदी मात्र Acc. No. 1257 में है । अन्य प्रतिओं में नहीं है ।

हरिगुणलीला कथा सुनने में परीक्षित महाराजा प्रसिद्ध हुये, शुकदेव जी कथा कीर्तन नें, प्रहलादजी स्मरण ध्यान में उन्होंने विश्व के समक्ष खंभे से, भगवान को नृसिंह रूप में प्रकट कर दिखाया ॥ त्रिपदी २४ ॥

पृथु महाराज अर्चना और स्तुति में सिद्ध हुये । चरण-सेवा में लक्ष्मीजी ही अधिकारिणी हैं । अक्रूरजी स्तव-स्तुति में, पृथुजी देव-पूजा में, दास्य भक्ति में हनुमानजी महाराज प्रसिद्ध हुये हैं ॥ त्रिपदी २५ ॥

अर्जुन सख्य भाव में, कृष्ण के साथ रहे और सेवा की, और भक्त बलि महाराज प्रभु के चरणों में, अपने आपको समर्पित कर चिर यशस्वी हुये । हे रसिक जन ! आप सुनो, मैं आप लोगों से निवेदन कर रहा हूं कि आप सदा इसी भजन पथ का अनुसरण करो ॥ त्रिपदी २६ ॥

(भजन करने पर सुख शान्ति की प्राप्ति होगी, सारे दुःखों का विनाश होगा । साधना की सारभूत वस्तु गोविन्द के अभय चरणार विन्द ही है यह पाठ अधिकांश प्रतिओं में नहीं है ।)

गुरु-कृपा को ही मुख्य मानकर, भक्ति-पथ का विवेचन करते हुये मन को, सदा साधु संगति में लगाये रखना चाहिये । साधुओं के साथ भक्ति कथा आस्वादन विविध रूप से और विस्तार पूर्बक करना चाहिये तभी हृदय से त्रिताप ज्वाला की समाप्ति होती है और चित्त निर्मल होता है ॥ त्रिपदी २७ ॥

तभी शुद्ध स्वर्ण की भाँति उज्ज्वल प्रेम अनुराग की वृद्धि होगी । राधा-कृष्ण के युगल चरणों की सेवा में मन रमेगा । राधा माधव के अप्राकृत दिव्य लीला रस और गुण समूह का प्रेम पूर्वक गायन करो । युगल चरणों का सदा ध्यान करो । इसके बिना मन और किसी वस्तु में न लगाओ ॥ त्रिपदी ॥ २८ ॥

चक्षु दान मोर हइल, आचार्य ठाकुर दिल,
सेइ दृष्टि परम कारण।
सुखमय वृन्दावन, लक्षकल्प आरोहण,
सुन भाइ पुरिया श्रवण ॥२९॥

॥ तथाहि ॥

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या, यत्र वृन्दावनं पुरीः।
तत्रापि गोपिका धन्या यत्र राधा शिरोमणिः ॥६॥ इति ॥

त्रिपदी छंद

बैकुण्ठेर परात्पर, लक्ष्मी आदि अगोचर,
अनन्तेर शिरे जार स्थिति।
कनके रचित स्थल, धातु रत्न प्रबाल,
चन्द्र कोटि जिनिजार ज्योति ॥३०॥

परागे धुसर स्थल, नाना रत्ने झलमल,
अष्टवर्णे ताहे नियोजित।
नाना वृक्ष लतागण, नवीण शुद्ध काञ्चन,
परसिते हय तो द्रवित ॥३१॥

तरुगण डाले डाले, अमृत शिशिर झरे,
नाना पुष्पे करे ज्योतिर्म्मय।

रामचन्द्र कहते हैं कि गुरुदेव श्रीआचार्य प्रभु ने मुझे दिव्य दृष्टि प्रदान की। वही दृष्टि शक्ति लीला रस आस्वादन में परम हेतु है। वृन्दावन परम सुखमय धाम है। यह सभी लोकों से ऊपर स्थित है। इसका उत्तम रूपेण अवधारण करो। ॥ त्रिपदी २९ ॥

॥ तथाहि ॥

रामचन्द्रजी एक श्लोक जो कि बहु प्रचलित है प्रमाण स्वरूप उद्धृत करते हैं। (यह पाठ चैतन्य चरितामृत के आदि लीला के चतुर्थ अध्याय में ३८ वाँ श्लोक के रूप में है अधिकांश चै. चरि. प्रतियों 'पद्म पुराण' लिखा हुआ है, परन्तु डॉ० तारापद मुखर्जी सम्पादित आनन्द पब्लिसर्स, कलकत्ता से प्रकाशित शोधित प्रति में ॥ तथाहि (गोपीप्रेमामृते च) पाठ उद्धृत है। मोर प्रकाशन कलकत्ता के सम्पादित पद्म पुराण में मुझे नहीं मिला।)

तीनों लोकों में पृथिवी श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें चिन्मय प्रेम निकेतन विद्यमान है। उसमें भी ब्रजगोपिकायें धन्य हैं जहाँ उनकी शिरोमणि नायिका राधिकाजी हैं। ॥ श्लोक ६ ॥

त्रिपदी

बैकुण्ठ आदि से भी परे, अर्थात् श्रेष्ठ, लक्ष्मी आदि के भी अगोचर स्थल सहस्रवदन अनन्त देव के फणों पर जिसकी स्थिति है, स्वर्ण से निर्मित, विविध धातु, मणि, रत्नों से जटित कोटि चन्द्र की कान्ति से बढ़कर जिसकी उज्ज्वलता है। (ऐसा वह स्थान वृन्दावन हैं।) ॥ त्रिपदी ३० ॥

वह पुष्प के परागों से पटा हुआ भाँति-भाँति के रत्नों से झिलमिला रहा है। अष्ट वर्ण की मणि मुक्ताओं से नियोजित है। विभिन्न प्रकार के लता समूह ऐसे प्रतीत होते हैं मानो शुद्ध स्वर्ण से निर्मित हों। स्पर्श करते ही वे झुक जाते हैं, क्योंकि वे भी तो प्रेम रस सिक्त हैं॥ त्रिपदी ३१ ॥

उसके सुन्दर वृक्षों के प्रति टहनिओं से दिव्य अमृत रूपी ओस टपका रहा है। तरह-तरह के पुष्प भी अपने में उज्ज्वलता लिये हुये हैं। कबूतर, तोता, मैंना,

कपोत शुक शारीक, मयूर कोकिल पिक,
मधुर मंगल गीत गाय ॥३२॥

शिरिष कुसुम दल, शितल विमल स्थल,
दरशने पुरे सर्व आश ।
पद्मराग नाना फूले, मत्त भृंग ताहे बुले,
गन्धमय सदाइ हरिष ॥३३॥

पूर्व महाकल्पतरु, स्थावर पीवर चारु,
अस्थि चर्म्म बिना तार तनु ।
पंच वर्ण फल फुले, प्रबाल मुक्ता दोले,
सिद्ध रत्नाकर मय जनु ॥३४॥

तार तले सुशीतल, केवल ज्योतिमय स्थल,
दिवानिशि ना हय गनन ।
अपरूप वृन्दावन, त्रिभुवन मोहन,
सर्बसिद्धि अभीष्ट कारण ॥३५॥

॥ तथाहि ॥

आसामहो चरणरेणुषामहं स्याम् ।
बृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥७॥ इति ॥
या दुस्त्यज स्वजनमार्यपथं च हित्वा ।
भेजुर्मुकुन्द पदविं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥८॥ इति ॥
—भाग० १०।४७।६१

मोर, कोयल और पपीहा सब मिलाकर मानों निकुंज में मंगल गीत गा रहे हैं ॥ त्रिपदी ३२ ॥

उसमें शिरिष के अति कोमल फूल बिछे हुये हैं। वह सुशीतल परम पावन स्थल है जिसके दर्शन मात्र से सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। पद्म राग मणि जैसे उज्ज्वल नाना पुष्पों में मतवाले भौंरे मँडरा रहे हैं। उनकी सुगन्ध से मन प्रफुल्लित हो उठता है ॥ त्रिपदी ३३ ॥

उसकी पूर्व दिशा में, एक महाकल्पतरु है, जो स्थावरों में अति सुन्दर हैं। उसके छाल, रेशा आदि कुछ भी नहीं हैं। उसमें पाँच प्रकार के फल फूल शोभायमान है। वे फल फूल कैसे हैं? मानों प्रवाल (मूँगा) मोती आदि के समान हैं। उस वृक्ष के नीचे परम सुन्दर सुखद सिद्ध स्थल विद्यमान है ॥ त्रिपदी ३४ ॥

उन वृक्षों के नीचे अत्यन्त शीतल और ज्योति समूह से जगमगाता स्वयं प्रकाशित स्थान है। उक्त स्थान की महिमा ऐसी है कि, वहाँ दिन या रात्रि कुछ भी नहीं, सदा एक समान ही प्रकाश है। ऐसा अत्यन्त मन मोहक दिव्याति-दिव्य तीनों लोकों को मोहित करने वाला धाम बृन्दावन है ॥ त्रिपदी ३५ ॥

॥ तथाहि ॥

यहाँ श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध, पूर्वार्द्ध के ४७ वें अध्याय के इकसठ वें श्लोक में उद्धव वचन को उद्धृत करते हैं। उद्धवजी कहते हैं कि—मेंरे लिये तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं वृन्दावन धाम में कोई झाड़ी, लता और औषधि जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ। अहा! यदि मैं ऐसा बन जाता हूँ तो मुझे इन ब्रजगोपिकाओं की चरण धूलि निरन्तर सेवन करने को मिलती रहेगी। इनकी चरण-रज में स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य हैं ये गोपियाँ। जिन्होंने अपने स्वजन कुटुम्बिओं तथा लोक वेद की आर्य मर्यादा को परित्याग कर भगवान की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनके परम चिन्मय प्रेम को प्राप्त कर लिया है। औरों की तो बात ही क्या भगवद् वाणी उनकी निःश्वास रूप समस्त श्रुतियाँ और उपनिषद भी अब तक भगवान के परम प्रेममय स्वरूप को खोजती रहती हैं, परन्तु प्राप्त करने में सक्षम नहीं हैं ॥ श्लोक ८ ॥

त्रिपदी छंद

जाहाते जन्मिते बिधि, आशा करे निरबधि,
दुइ पद परसेर आशे ।
किवा तरु लता वन, किवामृग पक्षीगण,
सबे वृन्दावन करि बासे ॥३ ॥

ह्रास बृद्धि नाहि ताये, नित्य लीला रसे रहे,
नित्य हय नूतन प्रकाश[1] ।
सूर्य कोटि सम आभा, प्रकाशित अति शोभा,
दरशने अति मनोहर ॥३७॥

विना बाय तरुगण, दोले तारा अनुक्षण,
मधुमय सेइ लतापता ।
नाना पक्षी गाय गीत, की मधुर सुलित,
जुगलकिशोर लीला कथा ॥३८॥

धातु रत्न मुक्तामाले, बेदी करे झलमले,
तारमध्ये रत्न मन्दिर ।
[2]अष्टालि रचित भाले, तार मध्ये अष्टदले,
पुरद्वारे पताका सुस्थिर ॥३९॥

---

१. प्रकारपाठ भी है ।

२. No. 39 त्रिपदी में Acc. No. 1257 में अष्टकाल पाठ है । और सभी प्रतियों में अष्ट कोण या अष्टालि पाठ है । "पुरद्वारे पताका" Acc. No. 1257 में प्रकाश पाठ है ।

ब्रह्मा वहाँ जन्म लेने के लिये सदा कामना करते हैं मात्र दोनों चरण कमलों को स्पर्श करने की अभिलाषा को लेकर वे लता, बेल, वृक्ष, झाड़ी या हिरण पक्षी आदि किसी भी योनि में जन्म लेकर इस वृन्दावन धाम में बास करना चाहते हैं ॥ त्रिपदी ३६ ॥

इस वृन्दावन में उतार-चढ़ाव या घट बढ़ नहीं है। यहाँ नित्य नवनवायमान प्रकाश है। यह कोटि सूर्य के समान कान्ति युक्त दिव्य प्रकाश से सुशोभित है। केवल दर्शन मात्र से मन को मोह लेता है ॥ त्रिपदी ३७ ॥

यहाँ बिना हवा के पेड़ पौधे सदा हिलते रहते हैं। वे सभी पेड़ पौधे मधुर हैं। यहाँ भाँति-भाँति के पक्षी जो गीत गा रहे हैं, वह भी कितना मीठा और मन मोहक है। गीत के माध्यम से राधाकृष्ण युगल के पावन लीला का गायन कर रहे हैं। ॥ त्रिपदी ३८ ॥

विचित्र धातु रत्न मोतिओं की माला या लरी से चबूतरा झिलमिला रहा है। उसमें भी विविध रत्नों से मण्डित एक भव्य मन्दिर है। अष्ट सखियों के द्वारा रचित सुन्दर अठ पहलू अट्टालिका शोभा पा रही है और उसमें भी मध्य भाग अष्ट दल कमल के समान है, मुख्य द्वार में पताका फहरा रही है ॥ त्रिपदी ३९ ॥

ताहे जत सखीगण, असंख्य तार गनन,
मुख्य मुख्य चतुर्दश मानि ।
ललिता विशाखा तथा, चित्रा चम्पक लता,
रङ्ग देवी सुदेवी बाखानि ॥४०॥

तुङ्ग विद्या ईन्दु लेखा, अष्ट सखी एइ लेखा,
षट कोणे आछे छय जन ।
अनंग मंञ्जरी आर श्रीरस मञ्जरी सार,
श्रीरूप मंञ्जरी प्रिय प्राण ॥४१॥

श्रीरति मंञ्जरी बलि, लबङ्ग मञ्जरी केलि,
श्रीगुणामंञ्जरी मंजुलाली ।
सखीगण जत इति, मधुर मधुर भाँति,
तार मध्ये दुइ जन जानि ॥४२॥

दुइ युथे सखीगण, तारा सेबे अनुक्षण,
इहा विनु नाहि अन्य गति ।
एइ संगे सदा रंञा, प्रेम सेवा लिव चाँञा,
एइ मोर मनेर जुगति ॥४३॥

अष्ट दले अष्ट जन, रत्नवेदी सिंहासन,
तार मध्ये दुइ करु स्थिति ।
धातु प्रबाल दल, अंगे करे झलमल,
देखि जेन विद्युतेर गति ॥४४॥

दोहाँर अंगेर शोभा, मुनिर मन करे लोभा,
दुइ रूप ना हय तुलना ।
रत्ने जड़ित जेन, मकर दर्पण हेन,
पुनमिक चाँद बदन ॥४५॥

रत्न कीरिट हार, श्रवणे कुण्डल भार,
अंगद बलया भुजे साजे ।

उस रत्न मन्दिर में सखी वृन्द असंख्य हैं। उनमें प्रधान प्रधान चौदह की मान्यता है। ललिता विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, रंग देवी, सुदेवी सेवा में तत्पर हैं ।। त्रिपदी ४० ।।

तुङ्गविद्या और इन्दुलेखा यह अष्ट सखी प्रसिद्ध हैं। छह कोणों में छह मञ्जरियाँ हैं अनंग मञ्जरी, रूप मंजरी के निकटतम हैं ।। त्रिपदी ४१ ।।

रति मञ्जरी, लवङ्ग मञ्जरी, गुण मंजरी और मंजु लाली प्रसिद्ध हैं। जितनी सखियाँ हैं सभी बहुत मधुर स्वभाव की हैं। उनमें भी दो प्रधान है। ।। त्रिपदी ४२ ।।

दो पंक्तिओं में सखी वृन्द सदा सेवा कार्य में मग्न रहती हैं। इसके बिना और कुछ भी ध्येय नहीं है। साधक रूप में रामचन्द्र जी कहते हैं कि इस मण्डली में सदा रह कर, युगल राधा कृष्ण की प्रेममयी सेवा माँग लूंगा। यही मेरे मन की एक मात्र अभिलाषा है ।। त्रिपदी ४३ ।

योग पीठ रूप कमल के अष्ट दलों में अष्ट सखी हैं। रत्नों से जटित वेदी सिंहासन शोभायमान है। इस दिव्य सिंहासन पर दोनों (राधा कृष्ण युगल) विराजमान हैं दोनों के अंगों में विविध प्रकार के धातु मणि माणिक्य के अलंकार झिलमिला रहे हैं। वह झिलमिलाहट या रत्नों की चमक मानों, चपला की चमकाहट है ।। त्रिपदी ४४ ।।

युगल की अंग कान्ति, मुनियों के मन को मोहित करने वाली है। दोनों के रूप की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती। उस पर रत्न जटित आभूषण ऐसा लग रहा है कि मानो मरकत मणि जटित दर्पण चमक रहा है। युगल के मुखारविन्द की शोभा, पूर्णिमा के चन्द्र को भी लजाने वाली है ।। त्रिपदी ४५ ।।

मस्तक पर रत्न जटित किरीट, गले में मणिमय हार, कानों में मकर कुण्डल शोभायमान हैं। दोनों भुजाओं में अंगद बलय, सोने के कटक (कड़ूले) बहुत ही

श्रीवत्स कौस्तुभ भाल, गले दोले बनमाल,
कटिते किंकिणि घन बाजे ॥४६॥

दशन मुकुता पाँति, इषत हसित गति,
अधरे सुस्वर बंशी बाजे ।
[1](घुर्णमान सदा आँखि, नाचिछे खञ्जन पाखी,
देखिया मदन तरासे ॥४७॥)

पीत बसन धर, पुष्प रसे मनोहर,
मुखर मंजीर पद्दे शोभा ।
सुर मुनि दुर्ल्लभ, व्रजराज वल्लभ,
देखिते अधिक मनोलोभा ॥४८॥

श्याम अंगे झलमल, धातु प्रवाल दल,
एत रूपे निरमिल विधि ।
षड़दश बर्ष करि, तबे से भजिते पारि,
असीम गरिमा गुण निधि ॥४९॥

ताँर वामे रंगिनी, लावण्ये भुवन जिनि,
काँचा काञ्चन जिनि तनु ।
मोर मने हेन बासि, जेन सौदामिनि राशि,
रत्न जड़ित शोभा जनु ॥५०॥

चाँचर केशेर बेणी, जेन नामियाछे फणि,
रतनेर थोपा ताहे दोले ।

---

१. No. 47 अर्द्ध कोष्ठक बद्ध त्रिपदी Acc. No. 36, 69, 1293, 1257, 1314, सभी में है । मात्र Acc. No. 17368 में नहीं हैं ।

लग रहे हैं। वक्षस्थल में श्री वत्स कौस्तुभ चिह्न विराजमान है। गले में बनमाला की शोभा भी अद्‌भुत है। कटि तट पर किंकिणी की गुंजार हो रही है ॥ त्रिपदी ४६ ॥

मृदु मृदु मुसकान में, दन्त पंक्तियां ऐसी लग रहीं हैं कि मानो मोतिओं की लड़ी हो। कृष्ण चन्द्र के अधरों से सुस्वर बंशी की ध्वनि हो रही है। (उनके चलायमान नेत्र, ऐसे हैं मानों खञ्जन पक्षी नृत्य कर रहा है। उन्हें देख मदन भी लजा रहा है। यह पाठ अधिकांश पाठ में है। २।३ प्रतियों में नहीं है) ॥ त्रिपदी ४७ ॥

श्रीकृष्ण पीत बसन धारण किये हुये हैं, फूलों के पराग से मण्डित है और चरणों में मुखर मंजीर अर्थात् नूपुर द्रुत गति से बज रहे हैं। ऐसे शोभा के आकर ब्रजराज बल्लभ कुँवर के दर्शन, सुर मुनि आदि को भी सुलभ नहीं है। दर्शन मात्र से मन लुभा लेते हैं ॥ त्रिपदी ४८ ॥

श्याम अंग में मणि माणिक्यों का आभूषण फब रहा है। विधाता ने मानों एक साथ विभिन्न गुणों के भण्डार समावेश कर दिये हों। पूर्ण षोडश वर्ष के अशेष गुण गरिमा सम्पन्न नन्द नन्दन का ध्यान मैं करता हूँ ॥ त्रिपदी ४९ ॥

जिनके बाँयी ओर लावण्य में अतुलनीया एक रंगिनी नायिका, (अर्थात् जो नायिका सदा कौतुक हास्यमयी हो) ऐसी राधिकाजी का मैं स्मरण करता हूँ। उनकी अंग कान्ति कैसी है? मानो कच्चे सोने से भी अधिक उज्ज्वल है। मेरे मन में यह आता है कि, आकाश की चमकती चपला को एकत्र कर विविध रत्नों द्वारा मण्डित एक प्रतिमा बनायी गयी हो ॥ त्रिपदी ५० ॥

उनके सिर पर, घन केश पाशों से गूँथी हुई वेणी नागिन सी लग रही है। उस वेणी के छोर पर रत्नों का झुग्गा लटक रहा है। उनकी चिबुक में चन्दन

कपाले सुपत्राबली, अलंकारे झलमलि,
नासिकाते मुकुता हिलोले ॥५१॥

बिम्ब अधर जिनि, मुखचाँद पुर्णमिनि,
श्रवणे कुण्डल दोले छवि ।
गले मुक्ता मणिमाल, केयुर कंकण भाल,
तिमिर प्रकाश जैछे रवि ॥५२॥

बक्षेर उपरे भाल, शोभे मुक्ता मणिमाल,
कनक शिखर युग माझे ।
मृगमद चन्दन, ताहे घन लेपन,
आत्साघन मरकत साजे ॥५३॥

कटिते किंकिणि जाल, नितम्बे निचोल भाल,
रतन अंगुरि सारि सारि ।
चरणे से बंकराजे, मधुर मंजिर साजे,
पंच रसाल मनोहारि ॥५४॥

पंचदस बर्ष हय, कृष्ण बामे सदारय,
कृष्ण प्रेमे विह्वल सदाइ ।
उपमा दिवार चाइ, मने भावि नाही पाइ,
दुहूँ रूपे भुवन भुलाय ॥५५॥

सुनिरे रसिक भाइ, मनेर विभाव्य एइ,
सदा करो एइ त स्मरण ।
ललिता विशाखा रति, सेइ युथे करि स्थिति,
अनुरागे थाकि अनुक्षण ॥५६॥

कस्तूरी आदि से निर्मित सुपत्रावली रची गई है विभिन्न आभूषण चमक रहे हैं। सुन्दर नासिका में मोती और उसके हिलने की शोभा निराली है ॥ त्रिपदी ५१ ॥

ओष्ठ द्वय बिम्ब फल की तरह प्रतीत हो रहे हैं मुख मण्डल पूर्णिमा के चाँद की भाँति सुन्दर लग रहा है। दोनों कर्णों में कुण्डल की शोभा न्यारी है। गले में, मोती और मणियों की माला बहुत सुन्दर लग रही है, केयूर कंकण आदि आभूषण राधाजी की भुजाओं की छबि बढ़ा रहे हैं। सूर्य की कान्ति जैसे अन्धकार को भगा देती है ठीक उसी प्रकार श्री जी की भुजा भक्तों के हृदयान्धकार को दूर करने में तत्पर है ॥ त्रिपदी ५२ ॥

राधिका के उरोज का वर्णन करते हुये कहते हैं कि मानों सोने के दो गुम्बजों के मध्य मोतिओं की माला शोभा पा रही हो। मृगमद अर्थात् कस्तूरी चन्दन का लेप अंगों में चढ़ा हुआ है। मरकत मणि जटित आभूषणों से सुसज्जित है। ॥ त्रिपदी ५३ ॥

कटि में किंकिणि जटित है और नितम्ब भाग में लहराबदार वस्त्र फब रहा है। अंगुलियों में रत्न जटित मुद्रिकायें शोभायमान है। चरण कमलों में बंक-राज (अर्थात् एक प्रकार का आभूषण जो नाव की आकृति का होता है। उसके धातु निर्मित पोले घेरे के अन्दर दाने होते हैं जो चलते समय मधुर ध्वनि निकालते हैं) पायजेब मधुर स्वर से बज रही हैं। राधारानी के चरणों में मानों पंच रसों (शान्त, दास्य, सख्य, बात्सल्य और मधुर) ने आश्रय ले लिया है ॥ त्रिपदी ५४ ॥

राधिकाजी कैसी हैं ? पन्द्रह वर्ष की हैं और कृष्ण के बायें सदा रहती हैं। कृष्ण प्रेम में तन्मय रहती हैं। मैं उनके रूप, गुण आदि की तुलना जिसके साथ करूँ, ऐसा कोई ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता। युगल की रूप माधुरी को पान कर विश्व विमोहित है ॥ त्रिपदी ५५ ॥

हे रसिक जन ! सुनो, दोनों के उस भुवन मोहन, लावण्यमयी रूप माधुरी का सदा हृदय में ध्यान करो। क्योंकि यही चिन्तनीय हैं, ध्येय हैं। मैं ललिता, विशाखा सखियों के प्रति श्रद्धा रखते हुये उनके यूथ में अर्थात् आनुगत्य में अनुराग-मयी सेवा हेतु तत्पर रहूँगा ॥ त्रिपदी ५६ ॥

अनंग मञ्जरि प्राण, तुआ पदे करि ध्यान,
रहु मोर बहुत प्रणति।
अनुगाय सखीगण, सेइ संगे अनुक्षण,
तबे से करिते पारि गति ॥५७॥

॥ तथाहि ॥

सखीनां संगिनि रूपा आत्मनां बासनामयी।
आज्ञा सेबा परांतत्तद्रूपालङ्कार भूषिता ॥ ९ ॥ इति ॥

सेबा साधक रूपने सिद्धि रूपेण चात्रहि।
तद्भाव लिप्सुना कार्या ब्रजलोकानुसारतः ॥१०॥ इति ॥
सेवाभावमयी कार्य्या काल देश बिधानतः।

त्रिपदी छन्दः
सदा सेवा अभिलाष, करि मने बिश्वास,
अनुरागे थाकिव सर्बथा।
सदा एइ संग घर, लीला कथा गानकर,
एइ सेवा एइ प्रेम कथा ॥५८॥

तोमाके कहिल भाइ, इहा बइ आर नाइ,
गुरु इष्टे नहे जे बिच्छेद।
तबे रस पुष्टि लागि, रूपे गुणे डगमगि,
सखि रूपे ताहे करि भेद ॥५९॥

मेरे प्राण तुल्य अनंग मंजरी हैं। मैं आपके चरण कमल का ध्यान करता हूँ। बारम्बार प्रणति निवेदन कर रहा हूँ। आपके ही आनुगत्य में सखियाँ हैं, उन्हीं के साथ रह कर सेवा करने का अभ्यास हो, तभी उस उन्नत उज्ज्वल रसमयी लीला में प्रवेश पा सकूँगा ॥ त्रिपदी ५७ ॥

॥ तथाहि ॥

श्लोकानुवाद—

रामचन्द्र कविराज दो प्रसिद्ध श्लोकों का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। यह दो श्लोक नरोत्तमदास ठाकुर ने प्रेम भक्ति चन्द्रिका में प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये हैं।

गुरु आनुगत्य में जब सखी समाज में उनके साथ भावना में रहने का सुअवसर प्राप्त होता है तभी अन्तरात्मा में सेवा अभिलाषा जाग्रत हो उठती है, सखी आनुगत्य में उनके आदेशानुसार समयोचित आभूषादि से सज्जित सखी रूप में सेवा के अवसर की प्राप्ति होती है ॥ श्लोक ९ ॥

साधक को सेवा कार्य बहुत सावधानी से करना चाहिये। जैसे बाहरी अवस्था में सेवा करे वैसे ही सिद्ध देह में अर्थात् मानसी सेवा में तत्पर रहना चाहिये। ब्रजवासियों के भावानुकूल सेवा में उत्साह रखना चाहिये। देश काल पात्रानुसार, भावमयी सेवा करते रहना चाहिये ॥ श्लोक १० ॥

मैं सदा युगल की सेवा की इच्छा मन में पोषण करते हुये, हृदय में विश्वास रखकर, सदा अनुराग रञ्जित दशा में निवास करूँगा। (मन को समझाकर कहते हैं), हे मन सदा इन अनुरागी जनों का संग करो। इनके साथ मिल राधाकृष्ण का लीला-गुणानुवाद करो। यह सेवा और प्रेम लीला गाथा का आस्वादन ही परम कर्त्तव्य है ॥ त्रिपदी ५८ ॥

हे मन ! तुम्हें एक रहस्यमयी बात बताता हूँ इसके ऊपर और कुछ भी नहीं है गुरु और इष्ट में कोई भेद नहीं है। लीला रस पुष्टि हेतु रूप गुण सम्पन्ना सखी रूप में उन्हें पाया जा सकता है ॥ त्रिपदी ५९ ॥

एक संगे दुइ जन, नाहि बाढ़े आस्वादन,
दुइ कुंजे दु`हा करु स्थिति ।
दु`हार बिच्छेद हय, द्विगुण सन्ताप ताय,
एइ सब साधकेर गति ॥६०॥

दुँहे दुँहार दरसने, स्थिर नहे दुँह मने,
दुँह लागि दुँह मन झूरे ।
तबे सखि दूती हइया, कृष्ण स्थाने जाय धाँञा,
मिलन संकेत कुंजान्तरे ॥६१॥

दुँहार विच्छेव हय, द्विगुण सन्ताप ताय,
इथे हय रस प्रचुर ।
जे हय रसिक जन, स्थिर नहे तार मन,
निरबधि बिकल अन्तर ॥६२॥

एइ रस आस्वादने, दिवानिशि नाहि जाने,
अधिक बाढ़ये मने सुख ।
मुञि अति शठ जन, इथे ना करिल मन,
कि शेल रहल मोर बुके ॥६३॥

॥ तथाहि ॥

गोविन्दलीलामृते—

राधा सङ्गे यदा भाति तदा मदनमोहन ।
अन्यथा विश्व मोहपि स्वयं मदन मोहित ॥११॥ इति ॥

त्रिपदी छंदः

जबे रहे राइ संगे, नाना कथा रस रंगे,
मदने कराय अचेतन ।

एक ही कुंज में दोनों युगल परस्पर विहार करते हैं तो आस्वादन की वृद्धि नहीं होती। दोनों को दो अलग कुंजों में विराजमान करा दिया जावे तो, दोनों को क्षणिक विरह दुगने सन्ताप को बढ़ाता है। इसकी गहराई में एक मात्र साधकों का ही प्रवेशाधिकार है॥ त्रिपदी ६० ॥

राधा कृष्ण परस्पर के दर्शन मात्र से ही दोनों स्थिर नहीं रह पाते हैं, परस्पर मिलने की इच्छा और अधिक तीव्र हो जाती है। तब दूती के रूप में सखी कृष्ण के निकट जाकर संकेत वट के निकट गह्वर कुंज में मिलन कराती है॥ त्रिपदी ६१ ॥

दोनों में विच्छेद होने से उन्हें दुगना कष्ट अनुभव होता है। परन्तु इससे रस की पुष्टि होती है। जो साधक परम रसिक हैं उनका मन कभी स्थिर नहीं हो पाता। क्योंकि युगल राधा कृष्ण की रसमयी सेवा में उनका मन डूबा रहता है॥ त्रिपदी ६२ ॥

साधक को, इस दिव्यातिदिव्य विशुद्ध रस के आस्वादन करते-करते दिन और रात्रि का भी आभास नहीं हो पाता जितना वह इस रस-सागर में डूबता जाता है उतना ही अधिक आनन्द अनुभव करता है। मन प्रसन्न हो जाता है। रामचन्द्रजी दैन्य पूर्वक निवेदन करते हैं कि मैं इतना कपटी व्यक्ति हूँ कि मेरा मन इस, अप्राकृत आनन्द में न रमा, इससे बढ़कर और क्या दुःख हो सकता है ? यह बज्र के समान हृदय को कष्ट दे रहा है॥ त्रिपदी ६३ ॥

श्लोकार्थ—

गोविन्द लीलामृत के एक श्लोक को प्रमाण स्वरूप उपस्थित करते हुये कह रहे हैं जब श्याम सुन्दर राधा के साथ हों तभी कामदेव के मन को भी मोहित करने वाले अर्थात् मदनमोहन होते हैं। नहीं तो वे भले ही विश्व मोहन हों, राधा के बिना कामदेव द्वारा मोहित हो जाते हैं॥ श्लोक ११ ॥

आगे कहते हैं कि—जब राधिकाजी के साथ रहते हैं और भाँति-भाँति के रसालाप में मग्न रहते हैं तब उन्हें देखकर कामदेव मूर्च्छित हो जाता है पर जब

राइ संगे जबे नहे, मन्मथ तरंगे दहे,
रूपे मोहे ए तीन भुवन ।।६४।।

ऐश्वर्ये माधुर्यं गति, माधुर्येर अनेकरति,
साधके करिबे आस्वादन ।
सतत साधुर संगे, लीला कथा नाना रंगे,
तीन रूप करि विस्तारन ।।६ ।।

(अन्य भाव किछु नय, भजिले आनन्दमय,
ऐकान्तिके करह साधन ।)[१]
शुन रे रसिक भाइ, इहार अधिक नाइ ।
धन मने करिया निश्चय ।
साध्येर अबधि जत, साधने पाइये तत,
तिरोभाव सेइ कृष्ण पाय ।।६६।।

साध्य शरीर धरि, साधन करिते पारि,
चित्त यदि अकपट हय ।
नित्य लीला करि आश, साधु स्थाने परकाश,
तबे से साधन सिद्ध हय ।।६७।।

साधने यदि सिद्धि हय, तबे नित्य सिद्धि पाय,
देहेर पतन मात्र हय ।

---

१. त्रिपदी नं० 65 के पश्चात कोष्ठकबद्ध अर्द्ध अतिरिक्त त्रिपदी मात्र Acc. No. 1257 में है । अन्य प्रतियों में दृष्टि गोचर नहीं होता है ।

राधा-संग रहित होते हैं, तब भले ही त्रिभुवन को अपने रूप गुणों से मोहित करते हों, कामदेव तरंग में अस्थिर रहते हैं ।। त्रिपदी ६४ ।।

ऐश्वर्य में भी माधुर्य का सहज प्रवेश है, माधुर्य से ही अनुराग बढ़ता है, साधक अपने भावानुकूल आस्वादन करते हैं। सदा साधु वैष्णवों की संगति में, लीला, कथा, भगवद्गुणानुवाद का आस्वादन होता है। उसे तीन रूप से प्रसार करके भक्त हृदय को सुख पहुँचायेंगे ।। त्रिपदी ६५ ।।

(विजातीय भाव में मन न रमाना, जो सही तौर पर भजन करता है उसे परानन्द की प्राप्ति होती है। कहते हैं अति निष्ठा और लगन के साथ साधन करते रहना आवश्यक है इस पाठ का दो प्रतियों में उल्लेख है।)

आगे रामचन्द्र कविराज कहते हैं कि—हे रसिक महानुभाव ! कृपया सुनो, इससे अधिक कोई साधन नहीं है। इस रसमयी साधना को हृदय में दृढ़ता के साथ धारण करो। साध्य वस्तु की चरम सीमा इस साधन से प्राप्त हो जाती है, यदि बाह्य आचरणादि लुप्त हो जायँ तब उस प्रेम रस में पगे हुए साधक को कृष्ण प्राप्ति होती है ।। त्रिपदी ६६ ।।

साध्य शरीर अर्थात् गुरु कृपा से नाम साधना आदि करते-करते चित्तवृत्ति शुद्ध होकर साधन के योग्य बन जाता है तभी उस देह से साधन सुलभ है। परन्तु ध्यान रहे चित्त निर्मल रहना चाहिये। रसिक साधु बैष्णवों के निकट रहने से तथा नित्य लीला के विषय में चर्चा करते रहने से तभी साधन पथ पर साधक आगे बढ़ पाता है और सिद्धि को प्राप्त हो जाता है यह साधन पार्थिव शरीर से नहीं सिद्ध देह से सम्भव है। सिद्ध देह का चिन्तन तभी हो सकता है जब चित्त निर्मल हो। साधु वैष्णवों द्वारा अनुभूत नित्य लीला जैसी उनके सत्संग में प्रकाशित होती है उसका चिन्तन करने से सिद्धि प्राप्ति होती है। ।। त्रिपदी ६७ ।।

साधक जब साधन करते-करते सिद्धि को प्राप्त हो जाता है तब नित्य लीला में प्रवेश पा जाता है। इस स्थूल नश्वर शरीर का भले ही विनाश हो जाता है,

दर्पण लइया हाथे, आपनाके देखे ताते,
साधके देखिते हेन पाय ॥६८॥

नित्य लीला नित्य स्थाने, लीला कथा करे गाने,
सदा करि मने परकाश ।
साधु संगे प्रेम कथा, आस्वादन कर सदा,
मने ना करिह अविश्वास ॥६९॥

आपनार निज काज, ताहे न करिह लाज
लाज करिले नाही पाइ ।
अकिञ्चन हइया रीति, साधु संगे कर गति,
जे कहेन बैष्णव गोसाँञि ॥७०॥

सेइ कथा सत्य मानि, गुरुबाक्य निष्ठा जानि,
काय मनोबाक्ये कर सेवा ।
जत आछे मही माझे, ताहे नाही कोन काजे,
ना पुजिव आर देवी देवा ॥७१॥

सदा संगे नरोत्तम, नाहिक ताँहर सम,
त्रिभुवने नाहि ताँर सीमा ।
दुहे रात्रि दिने बसि, अमिया सागरे भासि,
आलापन युगल महिमा ॥७२॥

एइ रस आस्वादन, करे ये भकतजन,
तार मुञि जाँउ बलिहारी ।
शुन रे रसिक भाई, परम निगुढ़ एइ,
विमुख ना हओ एकबेरी ॥७३॥

परन्तु सूक्ष्म शरीर या सिद्ध देह का नहीं । गुरु कृपा रूपी दर्पण में, साधक को अपना सिद्ध देह का अनुभव होता है जैसे कोई दर्पण में अपना मुँह देखकर अपने चेहरे का और उसे अपने सिद्ध स्वरूप का वैसा ही स्पष्ट दर्शन होता है जैसा कि दर्पण में किसी वस्तु का होता है । ॥ त्रिपदी ६८ ॥

राधा-कृष्ण के नित्य लीला का ध्यान एवं गायन, नित्य लीला स्थली में रसिकजनों के आनुगत्य में आस्वादन करना चाहिये । साधुओं के साथ युगल के प्रेम लीला का रसास्वादन करते रहना चाहिये परन्तु मन में अश्रद्धा या अविश्वास न आने पाये । अपराध से सावधान रहना चाहिये ॥ त्रिपदी ६९ ॥

अपने-अपने साधन भजनादि कार्य, या उसके आचरण लज्जा या संकोच नहीं करना चाहिये । संकोच से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी । अपने साधन, भजन. ध्यान, धारणा में लज्जा भय का लेश मात्र भी प्रवेश नहीं होना चाहिये, यदि लज्जा करोगे तो साधना सफल नहीं होगी सफल तभी होगी जब साधु-संगति में बहुत ही दीन-हीन भाव से जो कुछ वैष्णव गोस्वामी गण आज्ञा दें उसका यथावत् पालन करते रहें ॥ त्रिपदी ७० ॥

वैष्णव-गोस्वामी पादों के अनुभव जनित बचन को सत्य मानकर और गुरु वाज्य में निष्ठा रखते हुये, तन-मन-धन से सेवा-कार्य में संलग्न रहना चाहिये । जितने भी विश्व में देवी देवता आदि हैं उनमें तत्पर नहीं होना है और न उनकी पूजा उपासना में लगना है ॥ त्रिपदी ७१ ॥

रामचन्द्र कविराज कहते हैं कि परम रसिक नरोत्तम दास जी का सदा संग करूँगा । उनके समान रसिक भक्त तीनों लोकों में नहीं है । वे और मैं दोनों मिल-कर अहो रात्रि युगल केलि रस वार्ता आलापन और आस्वादन में संलग्न रहूँ, मानों प्रेम अमिया सागर में गोता लगाये ऐसी मेरी अभिलाषा है ॥ त्रिपदी ७२ ॥

इस निगूढ़ रस का, जो भी भक्त साधक आस्वादन करेंगे, उनका मैं सदा कृतज्ञ रहूँगा । हे रसिक भक्त साधक यह परम रहस्यमयी साधना है इससे एक क्षण भी विमुख न होना ॥ त्रिपदी ७३ ॥

जे हय रसिक रसे, प्रेमानन्दे सुख भासे,
युगल किशोर गुण गाने ।
गुरु मोक्ष करि सदा, भज श्याम गोरी राधा,
तिलेक विसर पाछे मने ।।७४।।

ऐश्वर्य माधुर्य संगे, गौराङ्ग हइला रंगे,
बुझ देखि ए सब कारण ।
आपनार निज गुण, आपने करि आस्वादन,
इहा सब जाने भक्तगण ।।७५।।

।। बसन्त राग ।।

पद— देख देख, आरे भाई, गोराचाँद परकाश ।
पुनमिक चाँद जैछे उयल आकाश ।।१।।

कुम्भराशि पूर्णमासी, गोरा अवतार ।
हरिल युगेर भार, धरणि निस्तार ।।२।।

रविकरे आछिल, जतेक जीव ताप ।
हरल सकल पहूँ, निज हिम दाप ।।३।।

कलियुगे तप यज्ञ नाहीं कोन तन्त्र ।
प्रकाशिलाँ प्रभु ताहे हरे कृष्ण मन्त्र ।।४।।

प्रेमेर बादर करि भरिला त्रिभुवन ।
तारकि नारकी जत पाइल तारण ।।५।।

अंध बधिर जड़ जत सब परकाशे ।
बिन्दु ना पाइल गाय रामचन्द्र दास ।।६।।

जो साधक अनन्य रसिक हैं, राधा कृष्ण के लीला गुण कीर्तन में, प्रेमानन्द सुख सागर में सदा तैरते रहते हैं । हे साधक । गुरुदेव को मुख्य मानकर, उनके ही आनुगत्य में, राधाश्याम सुन्दर का भजन सदा करते रहो । और पल भर भी उससे अलग न हो । ।। त्रिपदी ७४ ।।

ऐश्वर्य और माधुर्य के साथ, गौराङ्ग रूप धारण कर प्रभु प्रकट हुये, हेतु क्या था, इस पर विचार करो । प्रभु गौराङ्ग रूप धारण कर अपने ही लीला गुण आदि का आस्वादन करने हेतु पधारे इस रहस्य को भक्त वृन्द ही जानते हैं । ।। त्रिपदी ७५ ।।

पद— ।। बसन्त राग ।।

अरे भाई ! देखो-देखो, गौर चन्द्र प्रकट हो गये हैं । जिस प्रकार पूर्णिमा तिथि में चन्द्रमा आकाश में प्रकाशित होता है ।।१।।

उसी प्रकार पूर्णिमा तिथि पर कुम्भ राशि में गौराङ्गदेव प्रकट हुये । आपने अवतार लेकर कलिहत दुर्गत जीवों के पाप-ताप रूपी भार से धरती को मुक्त किया ।।२।।

जीव मात्र के जितने पाप-ताप थे, सब को अपनी शीतल कृपा किरणों से प्रशमित कर दिया ।। ।।

कलियुग में तप, यज्ञ, अनुष्ठान और तन्त्रसाधन, यह सब प्रभावशाली नहीं हैं, इस कारण से प्रभु ने हरे कृष्ण महामन्त्र का जाप और कीर्त्तन का सरल साधन पथ का निर्देश किया ।४।।

महाप्रभु चैतन्य देव ने प्रेम रस की वृष्टि कर तीनों लोकों को आप्लावित कर दिया विषयी, नारकीय यन्त्रणा पाने वाले दीन जीवों का उद्धार किया ।।५।।

अंधे, लंगड़े, लूले, बहरे सभी का उद्धार किया, सभी को प्रेम प्रदान किया, परन्तु रामचन्द्र दास को प्रेम की एक बूँद भी प्राप्त नहीं हुई ।।६।।

त्रिपदी छन्दः

जय रूप सनातन, देह मोरे एइ धन,
भूषण करिव सव गाय ।
श्रीगोपाल भट्ट पद, हृदे करि सम्पद,
इहा विनु आर नाही भाय ।।७६।।

केहो ना करिह रोष, खेमिबा सकलदोष,
जे कहिला बालकेर भाष ।
सुनरे रसिक भाई, स्मरण दर्पण एइ,
जे कहिल रामचन्द्र दास ।।७७।।

❀ ।। इति स्मरण दर्पण ग्रन्थ सम्पूर्णः ।। शुभमस्तु ।। ❀

त्रिपदी—

श्रीरूप सनातन, आपकी जय हो, मुझे कृपा रूपी धन प्रदान करें, उस कृपा रूपी भूषण को मैं सर्वाङ्ग में धारण करूँगा। श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी की चरण कमल रूपी सम्पत्ति को सदा हृदय में धारण करूँगा। इसके अतिरिक्त मुझे भी अच्छा नहीं लगता ।। त्रिपदी ७६ ।।

कोई मेरी त्रुटियों के कारण रुष्ट मत होना मेरे सभी अपराधों को क्षमा करना। हे रसिक भाई ! जो कुछ मैंने इस स्मरग-दर्पण नामक ग्रन्थ में कहा है, उसे अबोध बालक की वाणी समझ कर स्वीकार करना। ।। त्रिपदी ७७ ।।

।। इति स्मरण-दर्पण ग्रन्थः सम्पूर्णः ।। शुभमस्तु ।।

वृन्दावन शोध संस्थान में सुरक्षित —

स्मरण–दर्पण ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतिलिपियां

1. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र (कविराज) लिपि : बंगला Acc. N0. 38.
पत्रांक : 1–8 आकार :—23 × 13. cm,
प्राप्ति स्थान : रा. दा. मन्दिर
(लिपि तिथि नहीं है ।) पूर्णः

2. स्मरण-दर्पण – रामचन्द्र (कविराज) Acc. No. 69. लिपि : बंगला ।
पत्रांकः 1-7 (पूर्णः)
आकार—30.4 × 12 cm. प्राप्ति स्थानः रा. दा. मन्दिर
(लिपि तिथि नहीं है ।)

3. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र (कविराज) Acc. No. 331.
पत्रांकः 1-2 (खण्डित) आकारः 26.5 × 17.5 cm.
प्राप्ति स्थानः—रा. दा. मन्दिर (लिपि तिथि नहीं है)
लिपि : बंगला ।

4. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र (कविराज) Acc. No. 1257.
1-16 : लिपि : बंगला ।
आकार—35 × 12 cm. (पूर्णः)
प्राप्ति स्थान : रा. दा. मन्दिर लिपि
तिथि : बंगला सन 1203 (=1796)
लिपिकार रामानन्द दास ।

5. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र दास Acc. No. 1293.
पत्रांक: 1-9. लिपि: बंगला ।
आकार:—30.5 × 10 cm. (पूर्ण:)
लिपि तिथि—बंगला सन 1222 (=1815)
प्राप्ति स्थान—रा. दा. मन्दिर ।

6. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र Acc. No. 1314.
पत्रांक—1-8. लिपि : बंगला
आकार—37 × 12 cm. (पूर्ण:)
(लिपि तिथि नहीं है) प्राप्ति स्थान—रा. दा. मन्दिर ।

7. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र दास Acc. No. 1363.
पत्रांक—1-5. लिपि : बंगला
आकार—28.3 × 14 cm. (पूर्ण)
(लिपि तिथि नहीं है) । प्राप्ति स्थान—रा. दा. मन्दिर ।

8. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र दास Acc. No. 1507.
पत्रांक—1-9. लिपि : बंगला ।
(पूर्ण) आकार—20 × 12 cm.
(लिपि तिथि नहीं है) । प्राप्ति स्थान—रा. दा. मन्दिर ।

9. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र दास Acc. No. 1955.
पत्रांक : 1-8. लिपि : बंगला ।
(पूर्ण:) जीर्ण आकार 27 × 11 cm.
(लिपि तिथि नहीं है) प्राप्ति स्थान—रा. दा. मन्दिर ।

10. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र (कविराज) Acc. No. 6188
पत्रांक : 1 लिपि : बंगला ।
आकार—37 × 25 cm.
(पूर्ण:) जीर्ण: (लिपि तिथि नहीं है)
प्राप्ति स्थान रा. दा. मन्दिर ।

11. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र दास Acc. No. 6351.
पत्रांक—1-5 लिपि : बंगला ।
(पूर्ण:) जीर्ण: आकार—33 × 12 cm.
(लिपि तिथि नहीं है ।) प्राप्ति स्थान : रा. दा. मन्दिर ।

12. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र दास Acc. No. 7081.
पत्रांक : 2 (F. No. 1 or 8)
लिपि : बंगला, खण्डित, जीर्ण आकार—22.5 × 11.5 cm.
(लिपि तिथि नहीं है) प्राप्ति स्थान : अतुलकृष्ण गोस्वामी।

13. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र दास Acc. No. 4.356.
पत्रांक : 1-9
आकार—28.2 × 13.6 cm. (खण्डित) जीर्ण,
प्राप्ति स्थान–निताईचरण अधिकारी, नवद्वीप (लिपि सन नहीं है)।

14. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र दास Acc. No. 17,368.
(पूर्ण:) भाषा—बंगला : लिपि नागरी पत्रांक—11
आकार—26. 5 × 11.5 cm. (लिपि तिथि नहीं है,
प्राप्ति स्थान—श्रीआचार्य स्व० आनन्द गोपाल गोस्वामी,
राधावल्लभ घेरा, वृन्दावन।

15. स्मरण-दर्पण—रामचन्द्र दास Acc. No. 20, 176.
(पूर्ण:) भाषा—बंगला लिपि : बंगला, आकार—30 × 15 cm.
पत्रांक—6 लिपिकार—बंशीदास, लिपिकाल–बंगला, सन 1427
प्राप्ति स्थान—राधा दामोदर मन्दिर, वृन्दावन।